अध्याय ३ रा

खजुराहो का शिल्पी ` का नाट्यकला की दृष्टिसे विवेचन

` खजुराहो का शिल्पी ` का नाट्यकला की दृष्टि से विवेचन

कथावस्तु, कथावस्तु के विविध स्त्रोत तथा कथावस्तु का अनुशीलन :

` खजुराहो का शिल्पी ` डॉ. शंकर शेष द्वारा सन १९७०-७१ में लिखा गया नाटक है। इस नाटक में डॉ. शेष ने खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के निर्माण की कथा को आधार के रूप में लिया है। कथा ऐतिहासिक है और उसमें ` त्रासदी ` के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। गंभीर, विचार प्रधान कथावस्तु, नायक के जीवन की हानिपूर्ण घटनाएँ, करुणा और शोक का प्रदर्शन आदि कारणों से यह नाटक ` त्रासदी ` कहा जा सकता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक केवल सुखान्त ही होना चाहिए। नायक ने अपने जीवन में कितनी ही यंत्रणाएँ क्यों न सही हों, लेकिन उसकी कथा का अंत सुखपूर्ण, आनंददायी स्थिति में होगा। वास्तव में यह नियम नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि द्वारा बनाया गया है। यद्यपि ` उरुभंगम् ` जैसे अपवादात्मक त्रासदी संस्कृत साहित्य में दिखाई देते हैं। भरतमुनि के अनुसार -

> दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
> विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

समाज में विद्यमान लोग, जिनमें शारीरिक और मानसिक तापों से दु:खी, कड़े परिश्रमों से थके-हारे और तप:साधना में लीन ज्ञानियों का भी समावेश है, उन सभी प्रकार के लोगों को आनंद प्रदान करना ही नाटक का मूल प्रयोजन रहे। समाज में स्थित-भिन्न स्वभाव और भिन्न रुचि रखनेवाले लोगों के मनोविनोदार्थ नाटक की निर्मिति हो। इस तरह लोकरंजन ही उस काल के नाटकों का मूल प्रयोजन रहा। अत: शोकान्त नाटक का विकास प्राचीन भारतीय साहित्य में न हो सका।

पाश्चात्य तत्ववेत्ता अरस्तू द्वारा शोकनाट्य की संकल्पना प्रथम बनायी गयी। उनके अनुसार त्रासदी की कथावस्तु गंभीर विवेचन से युक्त होती है। त्रासदी की संकल्पना में अरस्तू ने निम्नलिखित चार बातों को महत्वपूर्ण माना है -

१) नाट्यकृति में गंभीर प्रकृति की आवश्यकता होती है।
२) कथावस्तु का आकार संमननीयता तथा आवश्यकता के सूत्रोंपर आधारित हो।
३) अभिनय और काव्यात्म भाषा के माध्यम से उसे प्रदर्शित किया जाए।
४) दर्शकों के मन में करुणा और भय का प्रदीपन तथा शमन करना इस कृति का उद्देश्य हो। इसीसे अंतिम ऐकात्मिक परिणाम साध्य होता है।

मानवीय मोह और मनुष्य के पतन का चित्रण करनेवाले ' खजुराहो का शिल्पी ' की मूल प्रकृति भी गंभीर और विचारप्रधान है। इसमें मानव और उसकी स्वाभाविक भावनाओं का संघर्ष दिखाया गया है। मानवी पतन की व्याख्या करनेवाली यह नाट्यकृति त्रासदी कही जा सकती है।

कथावस्तु :

दृश्य पहला -

चंदेल वंशीय राजा यशोवर्मन अपने विचित्र स्वप्न को लेकर अत्यंत उद्विग्न हैं। इतने में महारानी पुष्पा आकर सूचित करती है, कि उसने अंतःपुर में व्यभिचार करनेवाली दासी को निकालने का निर्णय लिया है। यशोवर्मन, महारानी पुष्पा को उस दासी को क्षमा देने के लिए कहते हैं।

उन्होंने बीती रात में एक स्वप्न देखा है। जिसमें उनके वंश की अधिष्ठात्री देवी हेमवती ने आकर चंद्रात्रेय (चंदेल) वंश संबंधी प्रचलित कथा के

अंतरंग को खोल दिया है। वह दासाणी नहीं, बल्कि एक ब्राह्मण की विधवा कन्या थी और उसने चंद्रमा जैसे सुंदर पुरुष के प्रेमपाश में फँसकर वैधव्य के कठोर व्रत का भंग किया था। उसका बेटा चंद्रवर्मन् चंद्र से प्राप्त नहीं, बल्कि चंद्र के समान सुंदर पुरुष का पुत्र था। विधवा हेमवती ने गर्भवती होने के कारण बहुत दु:ख भोगे थे। अत: वह चाहती है, कि संसार के लोग उसके उदाहरण से बोध लेकर "मोह के दाग" से बचने का प्रयास करें। उसकी स्मृति में एक ऐसा मंदिर बनवाया जाए, जिसे देखकर "दाग के मोह" में गिरकर अनंत दु:ख भोगनेवाली मानव जाति सचेत हो सके।

महाराज यशोवर्मन ऐसा मंदिर बनवाने का संकल्प करते हैं। लेकिन यशोवर्मन, महारानी पुष्पा तथा कवि माधव यह जानते हैं, कि राजशिल्पी चंद्रवर्मा ऐसा मंदिर बनवाने की सामर्थ्य नहीं रखता, जो मनुष्य को पतन की और जाने से रोक सके।

राजकवि माधव, योग्य शिल्पी को लेकर ही लौटने की प्रतिज्ञा करके उसकी खोज में चला जाता है। वह ऐसा शिल्पी लाना चाहता है, जो पत्थर की आस्था को पहचानता हो।

राजकुमारी अलका प्रवेश करके अपने पिता से चित्रकला एवं शिल्पकला की शिक्षा लेने की अनुज्ञा माँगती है। महारानी पुष्पा अपनी पुत्री के विवाह की चिंता में है। लेकिन महाराज यशोवर्मन पुष्पा की इच्छा के विरुद्ध अपनी पुत्री को इन कलाओं को प्राप्त करने के लिए अनुमति देते हैं।

<u>दृश्य दूसरा</u> -

अलका शिल्पी मेघराज आनंद से शिल्पकला की शिक्षा ले रही है। वह उसकी प्रतिमाओं के लिए प्रतिदर्श बनती है।

अनेक देश भटककर विलक्षण शिल्पी की खोज करनेवाले माधव को ऐसा शिल्पी चंदेलों की धर्मनगरी खजुराहो में ही मिल गया। शिल्पी मेघराज आनंद स्वयं भी " मोह के क्षण " के कारण बहुत दुख भोग चुका है। वह एक ऐसे शिल्प-संसार की निर्मिति करना चाहता है, जिसमें जीवन का एक भी पहलू न छूटा हो। राजकवि माधव उसे यशोवर्मन की मंदिर योजना बताता है। शिल्पी अपनी योजना यशोवर्मन के सामने रखने के लिए तैयार होता है। लेकिन वह स्पष्ट रूप से यह माँग करता है, कि प्रतिदर्श के रूप में उसे राजकुमारी अलका ही चाहिए।

दृश्य तीसरा -

कण्ववर्मा प्रवेश करके वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर की अपनी योजना यशोवर्मन के सामने रखता है, लेकिन योजना में नावीन्य के अभाव में यशोवर्मन उसे नकार देते हैं।

माधव, शिल्पी मेघराज आनंद सहित प्रवेश करता है। शिल्पी मंदिर का स्थान, मंदिर की वास्तु व शिल्प योजना आदि बताता है। वह अपने साथ कई रेखाचित्र, मानचित्र एवं मंदिर का मॉडेल लाया है। शिल्पी, मंदिर में मानवी जीवन की समग्र झाँकियों को प्रस्तुत करना चाहता है। मानवी जीवन के अविभाज्य अंग " काम " का अंकन भी वह मिथुन-मूर्तियों के माध्यम से करना चाहता है। प्रतिदर्श के रूप में जब शिल्पी अलका की माँग करता है, तब महाराज यशोवर्मन कुछ चिंतित हो जाते हैं, लेकिन स्वप्न के शिल्पी के मिल जाने के आनंद में वे उस विलक्षण शिल्पी की माँग को पूरी करने का वचन देते हैं।

दृश्य चौथा -

मध्यरात्रि पार हो जाने के बाद भी शिल्पी तथा अलका अपने शिल्प निर्माण कार्य में निमग्न हैं। सर्दी से काँपता एक वृध्द प्रवेश करता है। शिल्पी उसे अपनी रंगशाला में आश्रय देता है।

अलका शिल्पी की विदेही वृत्ति के कारण बेचैन है । वह शिल्पी से अपना प्रेम निवेदन करती है । लेकिन शिल्पी विचलित नहीं होता । वह अलका से बताता है, कि प्रतिदर्श में उलझाकर रह जानेवाला शिल्पी आगे कुछ नहीं बना सकता ।

इतनेमें ही वृध्द पुरुष अपने मूल रूप में प्रकट होता है । महाराज यशोवर्मन ही शिल्पी की परीक्षा लेने के लिए वृध्द के वेश में आये हैं । वे शिल्पी की स्थितप्रज्ञता से आश्वस्त होकर अलका के साथ लौट जाते हैं ।

कवि माधव आकर शिल्पी को सूचना देता है, कि मंदिर में लानेवाली मिथुन-मूर्तियों को लेकर धर्माचार्यों में विवाद छिडा है । लोग शिल्पी की हत्या करना चाहते हैं, उन्हें भडकानेवाला राजशिल्पी चंद्रवर्मा है । शिल्पी के जीवन की कुछ घटनाओं को विस्फोटक रूप से सामने लाकर वह उसे पापी, दुराचारी सिध्द करना चाहता है । लेकिन कवि माधव स्वयं चंद्रवर्मा के कुछ पापोंका पता रखता है । वह उसके प्रमाण धर्माचार्यों की सभा में प्रस्तुत करने की घोषणा करता है ।

<u>दृश्य पाँचवा</u> -

महाराज यशोवर्मन मंदिर की प्रगति से बहुत उल्लसित हैं । राजकवि माधव सूचित करता है,कि मंदिर-शिल्प की मिथुन मूर्तियों को लेकर विरोध बढता जा रहा है ।

खर्जुरवाह के वैष्णव धर्मगुरु, कौल तथा तांत्रिक पंथ के आचार्य आकर मंदिर की विलक्षण वास्तु-योजना के लिए महाराज को बधाई देते है । साथ ही मिथुन मूर्तियों को लेकर लोगों के मन में उठे विवाद के बारे में बताते हैं । कौल और तांत्रिक आचार्यों को मंदिर-शिल्प में लानेवाली मिथुन-मूर्तियों के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है । लेकिन धर्मगुरु चिंतित हैं, इसलिए कि मिथुन-मूर्तियों द्वारा मानव की

LIBRARY KOLHAPUR

कामासक्ति और वासना का खुला प्रदर्शन हो रहा है और विकृतिको प्रोत्साहन मिल रहा है।

बीच में चंद्रवर्मा आकर मेघराज आनंद के चरित्र के बारे में संदेह उपस्थित करता है। शिल्पी के अतीत को वह विस्फोटक रूप में लोगों के सामने रखता है। वह आरोप करता है, कि शिल्पी ने गुरुपत्नीपर बलात्कार किया था। लेकिन शिल्पी बताता है, कि ७५ वर्ष के वृध्द गुरु की १६ वर्षीया पत्नी ही उसपर मोहित हो गयी थी। उस कामासक्त स्त्री के आवाहन के कारण शिल्पी अपना संतुलन एक बार खो चुका था। लेकिन अपने पतन से वह लज्जित था। उसने बाद में अनन्त व्यथा भोगी है। और अब उसने मोह पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ली है।

शिल्पी के चरित्रपर लगाये जाने वाले लांछन को माधव नहीं सह सकता। वह चंद्रवर्मा के पापकृत्य को प्रकट कर देता है। तीन सुंदर पत्नियों के रहते हुए कामासक्त चंद्रवर्मा अंत:पुर की दासीपर मोहित हुआ था। वह स्वयं पापी है।

शिल्पी मंदिर निर्माण संबंधी अपने दर्शन को आचार्यों को बताता है। वह मंदिर के सांकेतिक रूप में संसार से मोक्ष तक मनुष्य-मन की यात्रा को समझाता है। धर्मगुरु शिल्पी के विलक्षण शिल्प दर्शन को जानकर चकित हो जाते हैं। मंदिर कार्य में प्रगति के हेतु शुभाशीर्वाद देकर आचार्य प्रस्थान करते हैं।

<u>दृश्य छठा</u> -

माधव और शिल्पी मंदिर की पूर्ति होनेपर अत्यंत प्रसन्न हैं। शिल्पी ने महाराज यशोवर्मन को वेश बदलकर लोगों की प्रतिक्रिया देखने के लिए भेज दिया है। शिल्पी का अनुमान सही निकलता है। महाराज ने मंदिर में दर्शकों के तीन प्रकार देखे हैं। एक - मंदिर की मिथुन-मूर्तियों में ही अपनेको खोकर रह जानेवाले वासनायुक्त लोग, दूसरे मिथुन-मूर्तियों को देखकर भागनेवाले - जो सांसारिक बंधनों से छूटने के लिए प्रयत्नशील हैं, तथा तीसरे वे, जो मंदिर की बाह्य सज्जा को न

देखकर सीधे गर्भगृह में आकर भगवान की मूर्ति के साथ एकाकार हो जाते हैं अर्थात् जो जितेंद्रिय हैं।

मंदिर की पूर्ति के बाद शिल्पी, महाराज से जाने की आज्ञा माँगता है, लेकिन महाराज तैयार नहीं होते। उनका रंगमंच से प्रस्थान होता है। शिल्पी और माधव प्राण-प्रतिष्ठा समारोह में अलका की अनुपस्थिति को लेकर चिंतित हैं। माधव की चिंता का रहस्य शिल्पी जान जाता है। वास्तव में माधव अलका से प्रेम करता है। शिल्पी की अलका के प्रति कठोरता उसके लिए असहनीय है। शिल्पी से अलका को दु:खी न बनाने की प्रार्थना करके वह चला जाता है।

माधव के चले जानेपर रंगशाला में अलका का प्रवेश होता है। मंदिर निर्माण के बाद शिल्पी के चले जाने की कल्पना से वह दु:खी है। शिल्पी की कठोरता से वह आहत है। लेकिन शिल्पी की विरक्त वृत्ति से पूर्णत: परिचित होने के कारण वह अपनी व्यथा अकेली भोगने के लिए तैयार है।

अलका शिल्पीद्वारा बनाये गये मूल प्रतिमाओं को तोड फोड कर पूर्णत: अपरिचित रह जाना चाहती है, लेकिन शिल्पी नहीं मानता। वह अपनी रचना को नहीं तोडना चाहता। अलका आवेश में आकर स्वयं उस मूर्ति को तोडने के लिए हथौडा उठाती है, लेकिन निर्मोही शिल्पी उस प्रतिमा के मोह को नहीं त्याग सकता, वह पत्थर की मूर्ति को बाँहों में बाँधकर कहता है, कि उसे उस पत्थर की मूर्ति से प्रेम है।

यहीं पर नाटक की समाप्ति होती है।

<u>कथावस्तु में ऐतिहासिकता</u> :

डॉ. शंकर शेष के नाटक `खजुराहो का शिल्पी` की कथावस्तु में ऐतिहासिकता, कल्पनातत्व और दंतकथा आदि का संतुलित मिश्रण हुआ है। यशोवर्मन

के मंदिर निर्माण की कथा निश्चित ही ऐतिहासिक है। इस कथा की ऐतिहासिकता के प्रमाण चंदेलों के इतिहास में अनेक जगहपर मिलते हैं।

चंदेल वंशीय राजा यशोवर्मन, उनका शासनकाल तथा उनके द्वारा विष्णु मंदिर निर्माण के संबंध में जो तथ्य मिल जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

' जिस प्रदेश को अब बुंदेलखंड नाम से पहचाना जाता है, वही पुराने जमाने में ' जेजाकभुक्ति ' नाम से प्रसिद्ध था। ईसा की ८ वी शती में खर्जूरवाहक (खजुराहो) पर चंद्रवंशीय क्षत्रिय कुल का शासन था। इस कुल का मूल पुरुष सन ७४० के आसपास विद्यमान था। '[१]

भारतीय पुरातत्व विभाग के अधीक्षक श्री. धम्मा अपनी पुस्तक ' खजुराहो ' में लिखते हैं –

"The Chandella, who ruled over Jejabhukthi (Bundelkhanda) from the ninth to thirteenth centuries, were a Rajput tribe, claiming descent from the moon."[2]

चंद्रात्रेय वंश की शुरूआत चंद्रवर्मन (८२५ से ८४० ई.) से मानी जाती है। चंद्रवर्मन के बाद चंदेल वंश में वाक्पति (८४५ से ८६५ ई.), जयशक्ति और विजयशक्ति (८६५ से ८८५ ई.) राहिल (८८५ से ९०५ ई.), हर्षदेव (९०५ से ९२५) ई.) आदि भीम पराक्रमी राजा हो गये। हर्षदेव के बाद उनके पुत्र यशोवर्मन (९२५ से ९५० ई.) ने पराक्रम की इसी परंपरा को अक्षुण्ण रखा।

हर्षदेव के शासनकाल से चंदेल साम्राज्य का अत्यधिक विकास हो रहा था। हर्षदेव के बाद उनके पुत्र यशोवर्मनने अपने साम्राज्य का विस्तार गौड, चेदि, कुरु, मिथिल, खश, कोशल, मालवा, गुर्जर प्रदेश के साथ कश्मीर तक किया था।

" चंदेल शक्ति का विकास हर्षदेव के पुत्र यशोवर्मन द्वारा अत्यधिक रूप में हुआ। उन्होंने अपने पिता की नीति का अनुसरण किया और विशाल साम्राज्य का विस्तार किया। "[3]

चंदेल वंशीय राजा यशोवर्मन के साथ उनके मंदिर निर्माण के संबंध में भी इतिहास में अनेक प्रमाण मिलते हैं। यशोवर्मन के व्यक्तित्व में वीर योध्दा के सभी गुण विद्यमान थे, साथ ही वे अत्यंत कलासक्त व्यक्तित्व के अधिकारी थे। ९५३-५४ ई. के " खजुराहो अभिलेख " में इसके बारे में जानकारी मिलती है, कि उन्होंने विष्णुका मंदिर बनवाया था।

" हर्षदेव के पुत्र यशोवर्मन (ई.स. ९२५ से ९५०) ने कालंजर का किला जीत लिया और जमुना से लेकर मालव तक और कश्मीर से लेकर बंगाल तक अपना प्रभुत्व स्थापित किया। यह सत्य है, कि वह प्रतिहारों का स्वामित्व मानता था, लेकिन केवल ऊपरी तौरपर। यशोवर्मन पराक्रमी योध्दा और साथ ही लोकप्रिय शासनकर्ता भी था। उसका दूसरा नाम लक्षवर्मन है। उसने खजुराहो में एक विष्णु मंदिर बनवाया, वह मंदिर लक्ष्मण मंदिर नाम से पहचाना जाता है। "[4]

प्रसिध्द इतिहासवेत्ता कनिंगहम ने भी इस बात की पुष्टि की है। इस मंदिर में विष्णु मूर्ति की स्थापना और वास्तुकला के बारे में जो बातें डॉ.शंकर शेष ने कही हैं, वे इतिहास पर आधारित ही है।

" यहाँ का लक्ष्मण मंदिर पंचायतन शैली में बंधा, अत्यंत कलापूर्ण मंदिर है। मंदिर के मंडप में जो शिलालेख है, उससे यह जानकारी मिलती है, कि इसे चंदेल राजा लक्षवर्मन ने बनवाया और इसीलिए इसे लक्ष्मण मंदिर नाम मिला है। उसने कन्नौज के राजा देवपाल से प्राप्त विष्णुमूर्ति की स्थापना इस मंदिर में की। यह मूर्ति चतुर्भुज और त्रिमुख है। इसके तीन मुखों में बीच का मुख मानवी और दोनों बाजुओं में एक वराह और एक नरसिंह का मुख है। मंदिर के प्रवेशद्वार पर सुंदर वंदनवार है। और इस पर मनोहारी नक्काशी खुदी है। गर्भगृह के द्वारपर बीच

में लक्ष्मी की मूर्ति है और उसकी दोनों बाजुओं में ब्रह्मा और शिव की मूर्तियाँ हैं। उसके ऊपरवाली जगहपर पंक्तिबध्द नवग्रहमाला है और द्वार-स्तंभपर समुद्र मंथन का दृश्य, विष्णुके अवतार और फूलपत्तीकी नक्काशी बनायी है। महामंडप में और अंतराल मार्ग में सिंहस्तंभ शिखर के बीच जो किन्नरी स्त्री मूर्तियाँ हैं, उनका शिल्पकाम अत्यंत अद्भुत है। [५]

डॉ. शंकर शेष ने ' खजुराहो का शिल्पी ' में वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर का निर्माण कार्य व पूर्ति यशोवर्मन के शासनकाल में ही बतायी है। लेकिन इतिहास इस बात की सहमति नहीं देता। प्रसिध्द इतिहासवेत्ता कनिंगहैम के अनुसार इस मंदिर की पूर्ति राजा धंग के काल में हुई है। लेकिन इस मंदिर के निर्माण का प्रारंभ निश्चय ही राजा यशोवर्मन के काल में हुआ था -

' लक्ष्मण मंदिर ' वैष्णव पंथियोंका प्रमुख मंदिर माना जाता है। इस मंदिर को राजा धंग ने विक्रम संवत् एक हजार ग्यारह (सं.१०११) अथवा सन नौ सौ चौपन (सन् ९५४) में पूरा किया। लेकिन इसी मंदिर का प्रारंभ यशोवर्मन अथवा लक्षवर्मन के शासन काल मेंही हुआ था। शायद इसीलिए इस मंदिर को लक्ष्मण मंदिर कहा जाता है। वस्तुत: यह मंदिर चतुर्भुज विष्णुका है। कनिंगहैम इस मंदिर को चतुर्भुज मंदिर ही कहते हैं। (संदर्भ : Cunningham Archaeological Survey of India Report Vol.2, p.425) इसी मंदिर को अब रामचंद्र मंदिर भी कहा जाता है.। [६]

ऐतिहासिक सत्य को न झुठलाते हुए भी यह कहा जा सकता है, कि शायद लक्षवर्मन-यशोवर्मन के काल में पंचायतन शैली के प्रमुख मंदिर की पूर्ति हुई होगी। प्रमुख मंदिर के अन्य चार उपमंदिर परवर्ती काल में पूरे हुए होंगे। डॉ. शेष ने भी शिल्पी मेघराज आनंद द्वारा - एक ही मंदिर निर्माण की बात कही है। अत: ऐतिहासिक तथ्य को नाटक में कहीं चोट नहीं आयी है।

कथावस्तु में दंतकथातत्व और तर्क -

भारत में नाटककारों का आदर्श ` ख्यातवृत्त ` रहा है । अर्थात् नाट्यरूप में प्रस्तुत करते समय ` ख्यातवृत्त ` में युगानुरूप परिवर्तन स्वाभाविक ही हैं । डॉ. शेष ने ` खजुराहो का शिल्पी ` में चंदेल इतिहास के नाट्यपूर्ण अंश को लिया है । और कल्पना तथा तर्क के आधार से उसे प्रस्तुत किया है ।

` खजुराहो का शिल्पी ` में डॉ. शेष ने चंदेल वंश संबंधी दंतकथा का प्रयोग भी अत्यंत युक्तिसंगत रूप में किया है । यह दंतकथा चंदेल वंश की अधिष्ठात्री देवी हेमवती के संबंध में है । उस दंतकथा का स्वरूप कुछ ऐसा है-

वाराणसी के गहिरवार राजा इंद्रजित के पुरोहित हेमराज की कन्या थी - हेमवती । हेमवती अत्यंत सुंदर थी । सोलह वर्ष की आयु में ही वह विधवा बन गयी । वह वैधव्य के कठोर व्रत का पालन कर रही थी । एक रात वह जब रतितडाग में स्नान कर रही थी तब प्रत्यक्ष चंद्रमा उसके रूप पर मोहित होकर पृथ्वीपर उतर आये । हेमवती वासना के भँवर में डूबकर अपना व्रत भूल बैठी । वह गर्भवती बन गयी । विधवा के गर्भवती होने के कारण समाज से उसे बहिष्कृत किया गया । वह काशी से निकाल दी गयी । गर्भ में शिशु लेकर वह चलती रही और अंत में कर्णावती के तटपर एक किसान की झोंपडी में प्रसूत हो गयी । इसके पुत्र का नाम चंद्रवर्मा । माँ के पापक्षालन के हेतु चंद्र की आज्ञानुसार उसने ` भांड ` नामक यज्ञ किया था । जिस नगर में वह महोत्सव किया गया, वही ` महोत्सव नगर ` अर्थात् आजका ` महोबा ` शहर है ।

उपर्युक्त कथा पर उत्तर भारत के लोगों की दृढ श्रद्धा है, लेकिन इस कथा के लिए ऐतिहासिक आधार नहीं है । ८ वी शती के चंदेल राजाओंका इतिहास कहीं भी उपलब्ध नहीं है ।[७]

हेमवती तथा चंद्रवर्मन संबंधी दंतकथा चंदबरदाई कृत ` पृथ्वीराज रासो ` के महोबा खंड में मिलती है । प्रसिध्द इतिहासवेत्ता कनिंघहैम ने भी इस दंतकथा का उल्लेख किया है ।

डॉ. शेष ने इस दंतकथा का आधार तो लिया है, लेकिन हेमवती के रूप-यौवन पर मुग्ध होनेवाले चंद्र देवता की जगह उन्होंने चंद्र के समान सुन्दर, पौरूष और यौवन से परिपूर्ण पुरूष की कल्पना की है । चंद्रदेवता के मर्त्य लोक पर अवतरित होने की बात से भी चंद्रमा जैसे पुरूष की कथा अधिक स्वाभाविक लगती है । चंद्रदेवता के स्वर्गलोक वापस जाने की अपेक्षा उस सुन्दर पुरूष का वासना की पूर्ति के बाद पलायन अधिक यथार्थ लगता है । आजके अवक्कश युग में चंद्रद्वारा वंश की उत्पत्ति की कथा भी हास्यास्पद लगती है । अत: डॉ.शेष ने इस दंतकथा में जो परिवर्तन कर दिये हैं, वे समुचित लगते हैं ।

<u>कथावस्तुमें कल्पनात्तत्व और तर्क</u> -

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु में प्रमुख कथा को प्रस्तुत करने के लिए ऐतिहासिक घटनाओंका आधार लिया गया है लेकिन नाटक की मूलकथा ` अलका और शिल्पी की कथा ` पूर्ण रूप से काल्पनिक ही है ।

इस कथा के प्रमुख पात्र अर्थात् अलका और शिल्पी दोनों भी काल्पनिक हैं । अलका को, डॉ. शेष ने यशोवर्मन की पुत्री के रूप में चित्रित किया है । लेकिन वह यशोवर्मन की संतान न होकर, पालित पुत्री होने का उल्लेख ही उसकी काल्पनिकता का सबसे बडा आधार है । अगर अलका चंदेल कुलोत्पन्न होती, तो इतिहास में उसका उल्लेख कहीं न कहीं अवश्य होता.।

खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर का शिल्प अन्य मंदिरों की अपेक्षा अत्यंत कलापूर्ण और सजीव बना है । [८] ऐसे शिल्प को बनानेवाला प्रमुख शिल्पी निश्चय ही अद्भुत प्रतिभा का धनी होगा, लेकिन इतिहास उसके बारे में कोई

जानकारी नहीं रखता । वह रहस्यमय शिल्पी अपनी अद्भुत शिल्पकला द्वारा अमर बन गया है । डॉ. शेष ने ऐसे शिल्पी की निर्मिति, कल्पना का आधार लेकर ही की है ।

कलाकार व्यक्ति के गुणावगुणों से युक्त शिल्पी को आकार देने साथ, उसके निर्मोही व्यक्तित्व के लिए कारण बनी उसके अतीत की कहानी, वह ` मोह का क्षण ` आदि बातें भी शेष की कल्पनासे ही आकार हो उठी हैं । शेष ने शिल्पी के रूप में एक ऐसा कलाकार प्रस्तुत किया है, जो पत्थर की आत्मा को पहचानता हो ।

राजशिल्पी चंडवर्मा और माधव भी कल्पना से ही प्रसूत पात्र हैं ।

कथावस्तु में तर्क का स्थान -

खजुराहो के मंदिरों में मिथुन-शिल्पों की रचना एक चिरंतन जिज्ञासा का विषय है । कदाचित इन शिल्पों को देखकर लेखक के मन में भी यही जिज्ञासा जाग उठी थी । आज तक अनेक विद्वानों ने इस बात को लेकर अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किए है । लेकिन ये मत विवादास्पद हैं । आज तक ये मिथुन-मूर्तियाँ रहस्य बनकर ही खडी हैं । डॉ. शेष ने कथानक में उन्हीं तर्कों का आधार लिया है । धर्माचार्यों द्वारा मिथुन मूर्तियों के संबंध में छिडे विवाद के प्रसंग का निर्माण (पाँचवें दृश्य में) इन्हीं तर्कों के आधारपर हुआ है । वे तर्क इस प्रकार के हैं -

१) मंदिरों में मिथुन मूर्तियों का विधान प्राकृतिक प्रकोपों से मंदिर की रक्षा के हेतु किया जाता है । उत्कल खंड, अग्निपुराण और बृहत् संहिता में इस बात के प्रमाण मिलते हैं ।

२) प्राचीन हिन्दू दर्शन के अनुसार ` काम ` को चार पुरूषार्थोंमें स्थान मिला है । अत: मानव के लिए अन्य तीन पुरूषार्थों के समान काम की

प्राप्ति भी आवश्यक मानी जाती थी। अथर्ववेद के ५३६ श्लोकों में से ३६ श्लोक इसी बात पर आधारित हैं, यही इस बात का प्रमाण है।

३) भारतीय ललित कला और साहित्य पर भी इसी बात का प्रभाव है। प्राचीन भारत में काम को कभी निषिध्द नहीं माना गया। अत: मानवी जीवन की सभी प्राकृतिक दृश्यों का जहाँपर अंकन हो, उन मंदिरों में मानव की काम भावना का अंकन भी स्वाभाविक था।

कामसूत्र, अनंगरंग तथा रतिरहस्य जैसे ग्रंथ भी इसी बात की पुष्टि करते हैं, कि प्राचीनकाल में काम जीवन को कभी रहस्यमय नहीं माना गया, बल्कि अन्य कलाओं की भाँति इसकी भी शिक्षा सामान्य लोगों को मिले-यही इन ग्रंथोंका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से मन्दिरों में इन कामशिल्पों का निर्माण हुआ होगा।

४) शिवशक्ति दर्शनपर आधारित कौल व कापालिक पंथों का प्रचार चंदेलों के काल में खूब हुआ। और इन पंथों की साधना विधियों में स्त्री-पुरुषों का मिलन एक धार्मिक उपचार के रुप में होता था। खजुराहो के शिल्पों में कामशिल्पों का जो समावेश हुआ है उसके पीछे तंत्र साधना की यह प्रणाली भी हो सकती है। ऐसे मिथुनों में वैषयिकता को स्थान नहीं था। `खजुराहो का शिल्पी` में इसी तर्क के आधारपर तांत्रिकाचार्यों के संवाद भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

५) इन सारे तर्कों के साथ लेखक ने मिथुन शिल्पों के बारे में अपना भी एक तर्क प्रस्तुत किया है। उसने नाटककी कथावस्तु में मंदिर के बाह्य प्राचीर पर खुदे मिथुन शिल्पों का ही नहीं, बल्कि मंदिर के पूर्ण वास्तु शिल्प का समावेश किया है।

इस मंदिर का रूपक ऐसा है - मंदिर की बाह्य प्राचीरपर बहुत से शिल्प होंगे, जिनमें मानवकी वासना के प्रतीक मिथुन शिल्पों का प्राबल्य होगा। प्रदक्षिणा पथ में पुराणों में वर्णित भगवान विष्णु की अनेक लीलाओं का वर्णन होगा और गर्भगृह में केवल भगवान विष्णु की मूर्ति होगी।

जो दर्शक बाह्य शिल्पों में ही खो जाएँगे, वे प्रभु चरणोंतक नहीं पहुँच पाएँगे। जो इन्हें तटस्थ भाव से देखकर आगे बढ जाएँगे, वे भगवान के लीलामय क्षेत्र की प्रदक्षिणा करते हुए गर्भगृह में स्थापित वैकुंठेश्वरनाथ के साथ एकाकार हो जाएँगे (द्रष्टव्य पृ. ८६)

डॉ. शेष ने यह तर्क शिल्पी मेघराज आनंद के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है। शिल्पी ने मंदिर द्वारा `सांकेतिक रूप में संसार से मोक्ष तक मनुष्य मन की यात्रा का रूपक रचा है। `(द्रष्टव्य, पृ. ८६)

खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर की शिल्प रचनाका परीक्षण करने पर यह तर्क अत्यंत साधार लगता है। नाटककार के कथनानुसार मंदिर शिल्प को तीन भागों में बाँटा गया है। लेकिन इन विविध निष्कर्षों के बाद भी नाटक में तांत्रिकाचार्य के द्वारा कही गयी बात - `यह मंदिर अपने प्रश्नवाचक चिह्न के कारण ही अमर होगा। ` अत्यंत सत्य प्रतीत होती है। वस्तुत: कलाकार अपने वातावरण से प्रभाव ग्रहण करके, अपनी प्रतिभा द्वारा कलाकृति का निर्माण करता है। इन मंदिरों का निर्माता किन बातों से प्रभावित था, यह एक रहस्य ही बन कर रह गया है।

<u>कथावस्तु का अनुशीलन</u> -

अरस्तू ने त्रासदी की कथावस्तु में तीन वैशिष्ट्यों का विधान किया है। वे निम्नलिखित हैं -

१) कथावस्तु(के लिए निश्चित आकार की जरूरत है ।

२) कथावस्तु में निश्चित आंतररचना की जरूरत है ।

३) कथावस्तु ही त्रासदी की आत्मा है ।

त्रासदी में व्यक्ति चित्रण की अपेक्षा घटना चित्रणपर अधिक ध्यान दिया जाता है, क्योंकि मनुष्य की अयोग्य कृतियाँ ही उसे दु:खी बनाती है । त्रासदी में इसी दु:ख का चित्रण गंभीर घटनाओं द्वारा किया जाता है । अत: मनुष्य जीवन की विशिष्ट कृतियों द्वारा घटित विपरीत घटनाओं का चित्रण त्रासदी की कथावस्तु में मिलता है ।

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु में शिल्पी के जीवन की ऐसी अप्रत्यक्ष घटना का चित्रण किया गया है । गुरू पत्नी पर मोहित होकर शिल्पी पतन की गर्त में गिर गया था । उसके बाद उसका जीवन ` मोह के क्षण ` पर विजय पाने के उद्देश्य से किया गया एक भीषण संघर्ष ही था । खजुराहो के मंदिर निर्माण का उसका संकल्प इसी संघर्ष से प्राप्त दर्शन को लोगों के सामने रखकर, उन्हें सचेत करने के लिए किया गया प्रयत्न ही है ।

<u>कथावस्तु का परिमाण</u> -

अरस्तू ने कथावस्तु के निश्चित परिमाण के बारे में Magnitude (महत्व या मात्रा) और Certain limited length (मर्यादित लम्बाई) - शब्दों का प्रयोग किया है । अर्थात् कथावस्तु की लंबाई इतनी ही हो, कि प्रेक्षक-पाठक विनाआयास उसे स्मरण में रख सकें । उसमें घटनाओंकी भरमार न हो, बल्कि आवश्यक घटनाओंकी एकात्मिक रचना कुछ ऐसी हो, कि उनमें से एक भी घटना को अनावश्यक नहीं महसूस किया जाए । कथावस्तु की रचना में से एक भी घटना को अलग निकाला जाए तो पूरा रचनाबंध महत्वहीन हो जाएगा । अरस्तू ने कथा को इसी अर्थ में ` स्वयंपूर्ण' कहा है ।

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु में घटनाओं के क्रम में एक संगति रखी गयी है । यशोवर्मन का स्वप्न, हेमवती की व्यथा, अलका की शिल्प कला विषयक जिज्ञासा, माधव द्वारा शिल्पी की खोज, शिल्पी की व्यथा, शिल्पी द्वारा मंदिर निर्माण, मंदिर की मिथुन मूर्तियों के संबंध में धर्माचार्यों में विवाद, चंडवर्मा की ईर्ष्या भावना और उसका परिणाम, मंदिर की पूर्ति और उसके बारे में लोगों की प्रतिक्रियाएँ, प्राणप्रतिष्ठा के समय अलका की अनुपस्थिति, अलकाद्वारा शिल्पी का अनुनय और शिल्पी का इन्कार आदि घटनाओंका संकलन डॉ. शेष ने ऐसी सूझ-बूझ से किया है, कि प्रत्येक घटना अगली घटना की कडी बन गयी है। इन घटनाओं में से एक भी घटना का निर्माण व्यर्थ एवं अनावश्यक नहीं है। ` मोह के क्षण ` का चित्रण करनेवाली इस कथावस्तु में प्रमुख पात्रों का ` मोह के क्षण ` से व्यथित रहना ही एक सूत्र है और इसी सूत्र को लेकर अन्य घटनाएँ अवतरित होती हैं।

चंडवर्मा और दासी का प्रसंग और उस प्रसंग की सूचना भी व्यर्थ नहीं, बल्कि सामान्य आदमी की मोहवशता को ही स्पष्ट करती है। अत: ` खजुराहो का शिल्पी ` की संरचना कुछ ऐसी बन गयी है, इसमें मानवी जीवन संबंधी वैश्विक सत्य का उद्घाटन तो हुआ है, फिर भी कथावस्तु तो परिमाण में अल्प ही है। कथावस्तु के संघटन में कहीं भी शिथिलता नहीं आयी है। अथवा कोई ऐसी भी घटना नहीं आयी है, जो मूल सूत्र से परे हो। इसी दृष्टि में ` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु अपने आप में स्वयंपूर्ण है।

<u>कथावस्तु में कथाओंका संगठन</u> -

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु का वास्तविक सूत्र ` मोह का क्षण ` है फिर भी शिल्पी और अलका की कथा को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तुत: संपूर्ण कथावस्तु में मोह के क्षण का विवेचन जगह-जगह पर होने के कारण, यही तत्व कथावस्तु में प्रमुख स्थानपर है। लेकिन इसी तत्व को स्पष्ट करने के

लिए जिन कथाओंका निर्माण हुआ है, उनमें अल्का और शिल्पी की कथा ही आधिकारिक है। वही कथा कथानक में अथ से लेकर इति तक रही है। हेमवती की दु:खगाथा, चंडवर्मा का अंत:पुरकी दासी के साथ अनैतिक संबंध, शिल्पी के अतीत की घटना (तीनों घटनाएँ अप्रत्यक्ष हैं), तथा माधव का अल्का के प्रति अव्यक्त प्रेम आदि घटनाओं का स्थान तो कथावस्तु में है, लेकिन वे मूल कथ्य को पुष्टि दिलाने का ही काम करती हैं।

इन घटनाओं का अपना महत्व तो कथावस्तु में जरूर है, फिर भी उनका परिमाण अल्प है। इन गौण कथाओं का परिमाण अत्यल्प होने के बाद भी उनके परिणाम दूरगामी हैं। जैसे - शिल्पी के अतीत की घटना के कारण उसने यायावरी का जीवन स्वीकार लिया, अपनी बेचैन आत्मा को शांति देने के हेतु उसने अनेक शिल्पों की रचना की लेकिन वह किसी एक जगहपर बंधकर नहीं रह सकता। उसकी शांति की खोज निरंतर जारी है और इसी सिलसिले में वह चंदेलों की धर्मनगरी खर्जूरवाह में आ गया है।

`त्रासदी` में वैसे भी एक ही प्रमुख कथा का विधान आवश्यक माना गया है। उलझनों से भरा हुआ कथानक, अनेक उपकथाएँ और उनमें से उत्पन्न विविध घटनाओं के कारण मूल कथ्य का विस्तार योग्य रूप में नहीं हो सकता।

त्रासदी की कथावस्तु में जो घटनाएँ चित्रित होती हैं, वे किसी पूर्णतया सत्प्रवृत अथावा पूर्णतया दुर्जन व्यक्ति के जीवन की नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह व्यक्ति गुण-दोषों से युक्त होना चाहिए ऐसे व्यक्ती का जीवन सुखदु:खान्वित होता है। अर्थात् अपने किसी दुर्गुण का वह स्वयं शिकार हो जाता है और उसके जीवन में दु:स्वप्नवत् क्षणों का क्रम बन जाता है। अथवा इस स्थिति के लिए उसका मनोदौर्बल्य भी कारणीभूत होता है।

शिल्पी ने भी मनोदुर्बलता का शिकार होकर गुरू पत्नी के साथ अनैतिक व्यवहार किया था, लेकिन तभी से उसके मन में कुंठा का निर्माण हुआ है।

वह सभी प्रकार के सौंदर्य का आस्वादन तो करता है, लेकिन उसके मन की कुंठा उसे उस सौंदर्य में डूब जाने से रोकती रहती है। शांति के लिए उसकी आत्मा छटपटाती रहती है। कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ जाकर वह स्वयं को भूलकर सौंदर्यानुभूति में खो जाए। कोई स्थान ऐसा नहीं, जो उसे स्वयं को विस्मृति में डूबने के लिए मदद दें। वह किसी एक स्थानपर ज्यादा समय तक नहीं रह सकता। इसी कारण वह एक तरह से निर्मोही बन गया है, लेकिन उसके अंतिम शब्द उसके निर्मोही होने के बारे में संदेह उपस्थित करते हैं।

<u>कथावस्तु की आंतररचना</u> -

शिल्पी को अलका का रूप पसंद आया। उसने अलका को सहस्त्रों मुद्राओं (poses) में प्रस्तुत किया। अलका का आधार लेकर वह संसार की ऊँचाई तक पहुँच गया। लेकिन अलका को उसने संसार में ही ऐहिक स्तरपर रखा। इतनी आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँचने पर भी वह मूल प्रतिदर्श के प्रति मोह को नहीं त्याग सका। यहीं पर उसकी दुर्बलता की पहचान होती है। सामान्य आदमी की तरह वह एक मोह की गर्त से उबरकर दूसरे मोह की गर्त में डूबने लगता है। अपनी कुंठा का आधार लेकर आध्यात्मिक ऊँचाई पर बने रहने का प्रयत्न वह कर रहा है लेकिन इतनी ऊँचाईपर पहुँचनेपर उसे अपनी स्वाभाविक इच्छाओंका गला घोंटना पडा है। एक बार ऊँचाई को छूने पर उसे नीचे की तरफ आना और साधारण जीवन जीना असाध्य लगता है। उसके मन की यह दुविधा नाटक के अंतमें दिखाई देती है।

इस पात्र का आत्मपीडन अत्यंत करूणाजनक और दर्शकों के मन में उसके प्रति सहानुभूति की भावना का निर्माण करनेवाला है। करूणा का प्रक्षोभ और शमन ही त्रासदी की कथावस्तु के प्रमुख तत्व माने गये हैं। `खजुराहो का शिल्पी' में मानव और नियति के बीच के संघर्ष में मानव की दुर्बलता और उसके कारूणिक पतन की व्याख्या हुई है।

कथावस्तु की अंतररचना में परावृत्ति (Reversal) और अभिज्ञान (Recognition)

परावृत्ति का अर्थ है विपरीत घटनाओं का निर्माण। जीवन में बहुत बार मन की इच्छा के विपरीत घटनाएँ ही घटित होती हैं। ये दुर्घटनाएँ केवल दैव अथवा नियति के परिणामस्वरूप ही होती है, ऐसा नहीं, बल्कि उनका निर्माता, रचयिता स्वयं मनुष्य भी हो सकता है। मनुष्य जानबूझकर ऐसी दुर्घटनाओं को अपने जीवन में आमंत्रित करता है अथवा खुली आँखों से स्वयं ही इन दुर्घटनाओं के जालमें फँस जाता है। गुरूपत्नी के साथ व्यभिचार की कल्पना शिष्ट समाजमें अत्यंत तिरस्करणीय मानी जाती है। शिल्पी मूलत: एक विवेकशील व्यक्ति है। वह उस व्यभिचार के परिणाम को भलीभाँति जानता है। ऐसे दुष्कृत्य से वह समाज से बहिष्कृत भी हो सकता है। चारित्र्य पतन के साथ उसका मानसिक अध:पतन भी हो सकता है। अपनी ही नजरों से उतरने की कल्पना भी मनुष्य के लिए दु:सह होती है। इन सभी बातों को जानकर भी शिल्पी `मोह के दाण` में बँध ही गया। गुरूपत्नी की आँखों के आवाहन के आगे उसका मनोनिग्रह ढह गया। नाटक में यही स्थान शिल्पी की परावृत्ति का स्थान है। शिल्पी ने जानबूझकर नीति विरूध्द आचरण किया है। नीति विरूध्द जाते समय उसे परिणामों का भय नहीं था, लेकिन जब सचमुच वह इस प्रसंग से गुजर चुका तब उसका विनाश अपरिहार्य था।

हेमवती की कथा में भी इसी परावृत्ति के दर्शन होते हैं। वैधव्य के अभिशाप को भोगती हेमवती पौरूष के आवाहन के आगे न टिक सकी। क्या उसे मालूम नहीं था, कि विधवा गर्भवती के लिए उसके समाज में स्थान नहीं है? लेकिन वासना मनुष्यको वास्तविकता के बारे में अंधा बना देती है। उसे ऐसे मोहजाल में फँसाती है, जहाँ काटे भी फूलों के समान प्रतीत होते हैं, लेकिन काल के परिवर्तन के साथन इन काँटों की चुभन भी सहनी पडती है। यही मनुष्य की नियति है।

` त्रासदी ` के नायक को विनाश पूर्व सत्यस्थिति की पहचान हो जाती है। अरस्तू ने इसी स्थिति को अभिज्ञान (Recognition) कहा है। ` खजुराहो का शिल्पी ` में मनुष्य जीवन में अपरिहार्य रीतिसे आने वाले ` मोह के क्षण ` का स्मारक बनाया गया, जो मानव को सचेत बना दे, लेकिन वास्तव जीवन में ऐसे मंदिर अपनी जगहपर रह जाते हैं और मानव अन्य इच्छाओं की पूर्ति के समान वासना की पूर्ति के हेतु बेचैन बनता ही रहता है। ` यह संसार तो कमजोर लोगों का है - गिरने - उठने - फिर गिरनेवालों का है।....यहाँ भूख लगती है, शरीर तपता है। इसीलिए शिल्पी, अध्यात्म छूटते देर नहीं लगती।` (पृ.९९) मनुष्य सामान्यत: इस वासना के भँवर में फँसकर रह जाता है। यह एक अपरिहार्य सत्य है। शिल्पी को भी इस बात का ज्ञान अंतिमत: हो ही जाता है और तब तक उसके सामने वही चिरपरिचित मोह का क्षण एक अलग रूप में खडा होता है।

नाटक का अंत इसी करुण कथा पर होता है, जहाँ इन मंदिरों के निर्माण का प्रेरणास्त्रोत अलका शिल्पी की हृदयहीनता पर सिसकती रह जाती है, किन्तु जो रहस्य उभरकर सामने आता है वह है - शिल्पी भी अलका से प्रेम करता है, पर केवल उसके प्रतिदर्श से, जीवन के कटु अनुभव ने इस, सत्य को स्वीकार करने का साहस उससे छीन लिया गया है।

शिल्पी क्या इस मोह को त्याग सकेगा अथवा नहीं ? इसी प्रश्नपर नाटक की कथावस्तु का अंत होता है।

नाटक की कथावस्तु में कुतूहल -

कौतूहल ` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तुकी आत्मा है। पग पग पर पाठक-प्रेक्षक के मन में यही प्रश्न उठता है, कि आगे क्या होगा ? नाटक के प्रथम दृश्य में यशोवर्मन के स्वप्नों के शिल्पी को साथ लेकर ही वापस

आने की, कवि माधव की प्रतिज्ञा के अंत के बारे में पाठकों के मन में निश्चित रूप से उत्कंठा जाग्रत हो जाती है ।

शृंगारिक मिथुन-मूर्तियों की सार्थकता के बारे में जब धर्मगुरु के मन में प्रश्न खडे होते हैं, तब पाठक भी सचिंत हो उठता है, कि आखिर यह अनोखा दर्शन, शिल्प के रूप में आकार लेगा अथवा नहीं ? मूर्तियों के बारे में अंतिम निर्णय सुनने की उतावली दर्शक के मन में जरूर उत्पन्न होती है । तांत्रिकाचार्य, धर्मगुरु, शिल्पी और यशोवर्मन के बीच जब `काम` के प्रदर्शन की सार्थता और व्यर्थता के बारे में विवाद छिड जाता है तब प्रेक्षक भी द्वन्द्वग्रस्त हो जाता है, कि आखिर `मोह के क्षण` के बारे में लोगों को सचेत करनेवाला यह मंदिर बनेगा अथवा नहीं ? और अगर बन भी गया तो उसका निर्माण मूल योजना के अनुरूप होगा अथवा नहीं ?

पात्रों के अभिनय में भी यही कुतूहल जन्म लेता है । जैसे - चंद्रवर्मा के रहस्य की जानकारी रखनेवाला माधव प्रेक्षकों के मन में उत्सुकता जगा देता है । यही कुतूहल का तत्व नाटक में अंत तक बना रहता है ।

'खजुराहो का शिल्पी' की कथावस्तु में संघर्ष -

त्रासदी में संघर्ष तत्व की प्रधानता रहती है । मानव का संघर्ष किसी प्रबल शक्ति से रहता है । इस प्रबल शक्ति का स्वरूप काल और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है । प्राचीन ग्रीक लोगोंपर धर्मकल्पनाओंका प्रभाव ज्यादा रहा । बाद में शेक्सपीयर के जमाने में मानव के विरुध्द उसकी प्रवृत्ति मुख्य संघर्ष का स्वरूप रहा । आज के जमाने में यही संघर्ष मानव और सामाजिक परिस्थितियों के बीच दिखाया जाता है । प्रत्येक नाटक में संघर्ष का स्वरूप मानव विरुध्द उपर वर्णित शक्तियों में से एक शक्ति ऐसा ही नहीं रहता, कभी कभी ये सभी प्रकार के संघर्ष तत्व एकत्रित होकर मानवपर टूट पडते हैं, तो कभी उनमेंसे कुछ मिलकर भी

आ सकते हैं। लेकिन गहराई से सोचा जाए, तो ऐसा नहीं लगता, कि ये विभिन्न शक्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। अंतिम सत्ता के ये विविध रूप मात्र कहे जा सकते हैं।

इन विभिन्न शक्तियों से लडता हुआ मानव विभिन्न दु:खद घटनाओं में से गुजरता रहता है। इन्हीं दु:खद घटनाओं में से शिल्पी गुजर चुका है। उसे अब मृत्यु का भी भय नहीं है। इसीलिए उसके एक हाथ में नारी का धधकता यौवन और दूसरे हाथ में भुजंग रहता है। शिल्पी की विदेहता के इतने प्रमाणों के मिल जाने के बाद भी नाटक के अंत में शिल्पी का व्यक्तित्व द्वन्द्वग्रस्त बना हुआ दिखाई देता है, ऐसा क्यों ? एक विदेह आत्मा के लिए मूर्ति का मोह क्यों उत्पन्न हो जाता है ? क्या अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को त्यागना मनुष्य के हाथ में बिल्कुल नहीं है ?

कथावस्तु में दूसरा संघर्ष अलका और शिल्पी के बीच चित्रित है। इस मानसिक संघर्ष में शिल्पी प्रथमत: तटस्थ बना रहता है। लेकिन अलकाद्वारा प्रतिदर्श को तोडने की बात सुनकर वह व्याकुल हो उठता है। अपनी रचना के प्रति मोह प्रत्येक कलाकार में रहता है, लेकिन एक निर्मोही के लिए यह मोह शोभादायक नहीं है। इस संघर्ष के अंत में ऐसा लगता है, कि अलका हारकर भी जीत गयी है और शिल्पी जीतकर भी हार गया है।

नाटक में मानव की ईर्ष्या भावना से उत्पन्न संघर्ष कोभी चित्रित किया गया है। चंडवर्मा के मन में शिल्पी के प्रति ईर्ष्याभाव है। अत: वह लोगों को शिल्पी के अतीत के बारे में प्रदात्मक रूप से बताकर भडकाता है। महारानी पृष्पा भी उसके कहने पर विश्वास कर लेती है। चंडवर्मा धर्माचार्यों की भरी सभा में शिल्पी को अनाचारी और पापी सिध्द करने की चेष्टा करता है। शिल्पी इन बातों से विचलित नहीं होता, लेकिन उन बातों का सत्य स्वरूप खोल देता है, जो उसके अतीत में घटित हो चुकी हैं। इस संघर्ष के अंत में चंडवर्मा पराजित हो जाता है। कवि माधव उसकी घृणित कार्रवाईयों का भंडा फोड कर देता है।

सामान्यत: शोकान्त नाटकों को त्रासदी कहा जाता है, लेकिन जिसक अन्त शोकपूर्ण हो, वही नाटक त्रासदी नहीं होता, बल्कि, जिस नाटकमें मानवी जीवन का दु:खपूर्ण चित्रण हो और उसकी कथावस्तु का अंत करुणा जनक हो, वे नाटक भी त्रासदी माने जाते हैं।

`खजुराहो का शिल्पी` में संघर्ष का रूप मानव विरूध्द उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में चित्रित हुआ है। मानव अपनी स्वाभाविक भावनाओं से दूर नहीं भाग सकता। मानवी जीवन में `मोक्ष` के पहले `काम` का अधिष्ठान माना गया है, लेकिन अगर काम की तृप्ति किये बिना व्यक्ति मोक्ष के पीछे दौडता रहे, तो उसकी साधना, बीच में ही खंडित हो जाती है। मानवी जीवन में ये मोह के क्षण हर मोड पर खडे रहते हैं।

हेमवती अत्यंत कच्ची उम्र में विधवा बन गयी और समाज की प्रथा के अनुसार उसे वैधव्य के कठोर व्रत का पालन करना पडा। वासना की पहचान भी उसे नहीं थी, लेकिन अचानक वह मोह का क्षण उसके जीवन में आ गया। वह उससे दूर न जा सकी। उसका प्रेमी अपनी भ्रमर वृत्ति के अनुसार अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर चलता बना। बेचारी गर्भवती विधवा इस संसार के शाप भोगने के लिए अकेली रह गयी। समाज ने उसे बहिष्कृत किया। वह अपने गाँव से निकाल दी गयी। इसके बाद का उसका जीवन अनंत यातनाओं का भोग मात्र था।

यही `मोह का क्षण` गुरूपत्नी के रूप में शिल्पी के जीवन में भी आ चुका था। और शायद इसीलिए अलका के गदराये यौवन सौंदर्य से वह घायल नहीं हुआ, उसकी वासना भडक न उठ सकी। इस तरह निग्रह पूर्वक वासना का दमन करके वह विदेह तो बन गया, लेकिन यही मोहका क्षण अनेक रूप धारण करके उसके सामने आता रहा है।

निष्कर्ष -

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु करुणा और दु:ख भावनाओं का प्रक्षोभ और शमन करनेवाली त्रासदी की कथावस्तु है । नाटक की कथा तो ऐतिहासिक है, लेकिन मूल उद्देश्य केवल इतिहास का उद्घाटन करना नहीं, बल्कि मानव संबंधी वैश्विक सत्य को स्थापित करना है । मनुष्य स्खलनशील प्राणी है । हर मनुष्य के जीवन में ` काम ` का विशिष्ट स्थान है । लेकिन कुछ मनुष्य ` काम ` की तृप्ति के बिना ` मोक्ष ` प्राप्ति की साधना में लीन होते हैं, लेकिन ऐसे लोगों के जीवन में भी ` मोह के क्षण ` आते हैं । और ऐसे क्षणों में ही मनुष्य की परीक्षा होती है । और कुछ मनुष्य ही ऐसे क्षणों में निर्लिप्त रह सकते हैं, अन्यथा ` मोह के क्षणों ` में गिरकर दु:खी होना ही सामान्य मानव की नियति है । डॉ. शेष ने ` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु द्वारा इसी कथ्य को संप्रेषित करना चाहा है । इस नाटक की कथावस्तु में ऐतिहासिकता के साथ दंतकथा, कल्पना तत्व, तर्क आदि बातों का भी आधार लिया गया है । गंभीर कथानक के बावजूद भी नाटक में कुतूहल की कमी नहीं है । संघर्ष के दो प्रकार-१. मानव विरूध्द उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति और २. मानव विरूध्द मानव, इस नाटक में चित्रित हैं ।

कथावस्तु अत्यंत सुसंगठित और प्रभावोत्पादक बनी है । इस कथावस्तु में चित्रित ` काम ` और मोक्ष ` के संघर्ष में मानव को विचार प्रवृत्त बनाने की शक्ति है ।

पात्र और चरित्र चित्रण

मानवी मन की मोहवशता को साकार करना ही ` खजुराहो का शिल्पी ` का उद्देश्य है। इस नाटक के पात्र नाटककार के इस उद्देश्य को साकार बनाते हैं। नाटककार के विचारों का वहन करने के लिए पात्रोंकी ऐतिहासिकता का मात्र आधार लिया गया है। पात्र ऐतिहासिक होकर भी सहज स्वाभाविक रूप रखते हैं। डॉ. सुरेश तथा डॉ. वीणा गौतम का कहना है - ` ऐतिहासिक पात्रों का चयन कर डॉ. शेष ने इस नाटक के माध्यम से शाश्वत और युग-युग के सत्य को सम्प्रेषित किया है। `६

पात्रोंकी ऐतिहासिकता एक सीमा तक सत्य है। नाटक के कुछ पात्र ऐतिहासिक जरूर हैं, लेकिन कुछ पात्र लेखक की प्रतिभा की उपज हैं। इन पात्रों के निर्माण में नाटककार की कल्पना सक्रिय है। चंदेल वंशीय महाराज यशोवर्मन की ऐतिहासिकता निर्विवाद है, लेकिन महारानी पुष्पा, राजकवि माधव, राजशिल्पी चंद्रवर्मा, शिल्पी मेघराज आनंद और अलका-इन पात्रों की ऐतिहासिकत के संदर्भ नहीं मिलते।

पात्र परिचय :

` खजुराहो का शिल्पी ` में आधिकारिक कथा का प्रमुख पात्र है शिल्पी मेघराज आनंद। वह ` मोह के क्षण ` का शिकार बन गया है और उससे उत्पन्न बेचैन मन:स्थिति से उबरने के लिए, शांति की खोज करता हुआ स्थान-स्थानपर भटकता रहता है। ऐसी ही यात्रा के बीच वह चंदेलों की धर्मनगरी खर्जूरवाह में आया है। महाराज यशोवर्मन चंदेलवंशीय शासक है, जो उनके वंश की अधिष्ठात्री देवी हेमवती की आज्ञानुसार अभूतपूर्व मंदिर का निर्माण करना चाहते हैं।

राजकवि माधव यशोवर्मन के दरबारी कवि हैं। शिल्पी चंद्रवर्मा राजशिल्पी है। उसे यह पद अपनी प्रतिभा से नहीं, बल्कि विरासत में मिला है। अन्य पुरुष पात्रों में धर्मगुरु और तांत्रिक आते हैं। धर्मगुरु वैष्णव पंथ के धर्माचार्य हैं और तांत्रिक कापालिक शक्ति पंथ के पूजक हैं।

नाटक में केवल दो स्त्री पात्र हैं। महारानी पुष्पा महाराज यशोवर्मन की सहधर्मचारिणी है। वह एक ममतामयी माँ और पति के सुख-दुःख को बाँटलेनेवाली पत्नी है। अनिंद्य सुंदरी राजकुमारी अलका महाराज यशोवर्मन और महारानी पुष्पा की पालित कन्या है, जो अपने अद्वितीय रूप के कारण खजुराहो के मंदिर शिल्पकी प्रेरणा बन जाती है।

नाटक में द्वारपाल, अंगरक्षक आदिपात्र प्रासंगिक महत्व रखते हैं।

इसके अतिरिक्त नाटक में कुछ ऐसे भी पात्रोंके उल्लेख आते हैं, जो कभी रंगमंचपर उपस्थित नहीं होते, फिरभी उनके अस्तित्व नाटक की कथा में छाँ करे रहते हैं। इन पात्रों में प्रमुख पात्र है - हेमवती। हेमवती चंदेल वंशकी अधिष्ठात्री है। उसकी आज्ञानुसार यशोवर्मन मंदिर बनवाना चाहते हैं। रोहिणी-शिल्पी मेघराज आनंद के आचार्य की पत्नी है। इसीके कामार्त आवाहन के आगे शिल्पी के मनोधैर्य के बाँध टूट गये थे। दासी अनुराधा अंतःपुर की सेविका है, जिसके साथ राजशिल्पी चंद्रवर्मा का अनैतिक संबंध है। ये पात्र रंगमंचपर कभी प्रकट नहीं होते, लेकिन इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के स्पष्ट उल्लेख अन्य पात्रों के मुखसे बार-बार होते रहते हैं।

<u>पात्रों का चरित्र-चित्रण</u> :

१) <u>महाराज यशोवर्मन्</u> -

डॉ. शंकर शेष ने यशोवर्मन का चरित्रांकन करके इस ऐतिहासिक पात्र के बहुआयामी व्यक्तित्व को प्रकट किया है। यशोवर्मन चंदेल राजवंश के सुप्रसिध्द शासक (सन् ९२५ से ९५०) थे। उनके शौर्य की पहचान वैरियोंको

प्रथम दृश्य में ही मिल जाती है । ` उनका वंश आज वैभव के शिखरपर है, आपकी कीर्ति देश के हर कोने तक फैली है ` (पृ.११) महारानी पुष्पा के कथनसे इस बातकी पुष्टि होती है । राजकवि माधव के ये शब्द - ` चंद्र वर्मन, नानुक, वाक्पति, हर्ष की परम्परा को न केवल आपने गौरव मंडित किया, उसे आगे भी बढाया । राष्ट्रकूटों से कालिंजर की विजय, कलचुरियों और चेदियों का मानन्मर्दन, गुजरात के प्रतिहारोंका गर्व-खण्डन...आपके शौर्य का लोहा पूर्व में मिथिला तक, उत्तर में कश्मीर तक माना जाता है । मालवों के लिए तो आप कालवत् हैं ।....` (पृ.१५-१६) यशोवर्मन की अपराजेय शक्ति की ही जानकारी देते हैं ।

यशोवर्मन अपनी शक्ति से भलि-भाँति परिचित है । ` शत्रु यशोवर्मन की शक्ति से परिचित हैं । कोई भी अकाल मृत्यु को निमंत्रण देना नहीं चाहता ।` (पृ.१०) लेकिन उनकी युध्द की लालसा अब समाप्त हो चुकी है । उन्हें मालूम है, कि चंद्रात्रेय वंश की कीर्ति राज्य-विस्तार से अमर नहीं होगी । ऐसी परिपक्व बुध्दि रखनेवाला यह राजा अत्यंत न्यायनिष्ठुर, प्रजा-पालन के कर्तव्य के प्रति दक्ष है ।

शौर्य पुरुष जाति के चरित्र का शृंगार है । यशोवर्मन के चरित्र में उसकी कोई कमी नहीं, फिरभी उन्होंने जीवन की अन्य बातों की ओर पीठ नहीं फेरी है । नाटक में वे कलाके अच्छे मर्मज्ञ के रूपमें अवतरित हैं । अपनी पुत्री अलका को सभी कलाओं की शिक्षा देना उनकी इसी रसिकता का परिचय देता है । वे अपनी कल्पनाद्वारा मंदिर निर्माण का एक नया अध्याय निर्माण करना चाहते है । संगीत रस के मर्मज्ञ के रूप में उनकी तब पहचान होती है, जब तीसरे दृश्य के अंत में अलका कहती है - ` संगीत का आपसे बड़ा अधिकारी व्यक्ति कौन होगा पिताजी ?` (पृ.५७)

यशोवर्मन् संवेदनशील हृदय के अधिकारी हैं। हेमवती की व्यथा को सुनकर, उस बेचारी गर्भवती विधवा की स्थिति का अंदाजा लगाकर उनका हृदय करुणासे पसीज उठता है। इसी संवेदनशीलता के कारण वे हेमवती की आज्ञानुसार संसार के समस्त मनुष्य प्राणियों को `मोह के क्षण` की सूचना करानेवाला मंदिर बनवाने का संकल्प करते हैं।

लेकिन इस कलाकार व्यक्तित्व को पिटी-पिटाई लीकपर नहीं चलना है। वे एक ऐसा अद्वितीय शिल्प संसार बनाना चाहते हैं, जिसमें मनुष्य जीवन की सम्पूर्णता का अंकन हो। उसके लिए उन्हें एक ऐसे शिल्पी की तलाश है, जो `पत्थरों की आत्मा को पहचान सके` और हेमवती के स्वप्न को साकार बना सके। उनको विश्वास है, कि ऐसा शिल्पी मिल ही जाएगा।

मेघराज आनंद के रूप में उन्हें एक ऐसा विलक्षण शिल्पी मिलजाता है, जिसने `मोह के क्षण` का स्वयं अनुभव किया है। शिल्पी की मंदिर निर्माण की योजना को सुनकर महाराज यशोवर्मन तुरन्त आश्वस्त हो जाते हैं। लेकिन जब शिल्पी मंदिर की मूर्तियों के प्रतिदर्शके रूप में राजकुमारी अलका की मांग करता है, तब उनके कलाप्रेम और दृढ़प्रतिज्ञता की सच्ची कसौटी लगती है। और वे इस कसौटीपर खरे भी उतरते हैं। मानवी वासनाओं का प्रदर्शन करनेवाली मिथुन मूर्तियोंके लिए अपनी कन्या को प्रतिदर्श के रूपमें देना स्वीकार कर वे एक ऐसा कार्य करते हैं, जो किसी अत्यंत पुरोगामी विचारों का व्यक्ति ही कर सकता है।

जब धर्मगुरु द्वारा मिथुन मूर्तियों के संबंध में आपत्ति की जाती है, तब शिल्पी के दर्शन को योग्य माननेवाले महाराज यशोवर्मन उसका पक्ष लेकर लड़ते हैं। यहाँ भी परिपाटी को तोड़कर नये विचारों को चलना देने वाले आदर्श शासक के रूप में यशोवर्मन के दर्शन होते हैं। इस पात्र की दृढ़प्रतिज्ञता ऐसे क्षणों में स्पष्ट होती है।

सभी धर्म पंथों को एक साथ लेकर चलने की भावना, सहिष्णु वृत्ति रखने वाला यह राजा एक प्रजावत्सल शासक के आवश्यक गुणों से मंडित पात्र है। इस बात का परिचय पाँचवें दृश्य में धर्माचार्यों की सभा में मिलता है।

एक राजा होने के साथ महाराज यशोवर्मन् एक पुत्री के वत्सल पिता भी हैं। अलका उनकी पालित कन्या क्यों न हो, उसे राजकुमारी के सभी अधिकार प्राप्त हैं। महाराज यशोवर्मन् ने उसे सभी विधाओं और कलाओं की शिक्षा दी है। अलका की इच्छानुसार उसे शिल्पकला और चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति देकर वे अपनी संतान की हर इच्छा पूरी करनेवाले वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप को स्पष्ट करते हैं। महारानी पुष्पा की तरह उन्हें अलका के विवाह की चिंता है। लेकिन उनका कहना है, ` मैं अपनी कन्या को किसी राह चलते व्यक्ति को नहीं सौंप सकता। ` (पृ.२२) अलका के लिए उन्हें सपनों के राजकुमार की खोज करनी है। ` लेकिन इस स्वप्न-सी सुंदर कन्या के लिए कोई राजपुत्र तो दिखायी दे। ` (पृ.२४) और अपनी संतान पर्व गर्व रखने वाला वह पिता आत्मविश्वास से कहता है - ` सपनों का राजकुमार भी मिल जाएगा रानी। यदि माधव को उसकी कल्पना का शिल्पी मिल सकता है, तो मुझे अपने सपनोंका राजकुमार क्यों नहीं मिलेगा ? ` (पृ.२४)

अलका के प्रति स्नेह और मोह के कारण उन्हें एक सामान्य पिता के रूप में भी देखा जा सकता है, जो अपनी संतान के भले-बुरे की चिंता वहन करता है। वृध्द गृहस्थ का वेश धारण करके, मध्यरात्री के समय में शिल्पी की शिल्प शाला में जाकर अलका और शिल्पी के बीच चलनेवाले क्रियाकलापोंको देखने वाले यशोवर्मन के मन में यही चिंता है। अपनी पुत्री अलका का चरित्र वे किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में नहीं सौंपना चाहते, जो उथला और छिछला हो। शिल्पी की विदेही स्थिति का परिचय पाकर उनकी इन्हीं शंकाओंका निरसन होता है।

इस पात्र का चित्रण करके डॉ. शेष ने समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाया है। उन्होंने महाराज यशोवर्मन के रूप में एक ऐसा आदर्श शासक निर्माण किया है, जो आधुनिक सत्ताधारियों के लिए अनुकरणीय सिद्ध हो सके। `डॉ. सुरेश और डॉ. वीणा गौतम ने इस पात्र के बारे में कहा है - `प्रजा रक्षक इस ऐतिहासिक पात्र को आधुनिक संगति में आदर्श मानवीय रूप में प्रस्तुत करना शंकर शेष की महान् उपलब्धि है, जो सत्ताधारियों के लिए अनुकरणीय आदर्श है, जिसकी परिभाषा आज युग-सत्य ने बदल दी है। लेकिन नाटककारने साहित्यकार के रूप में अपने दायित्व की पूर्ति सफलता के साथ की है।`१०

यशोवर्मन के रूपमें प्रजावत्सल,दृढ़प्रतिज्ञ,वीर राजा और संतान के प्रति अकृत्रिम स्नेहयुक्त पिता के दर्शन होते हैं।

वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर जिसे आज लक्ष्मण मंदिर के नाम से जाना जाता है, महाराज यशोवर्मन के कलाकार हृदय का साक्षी बनकर कई शताब्दियों तक खड़ा है। एक द्रष्टा राजा की यह चिरंतन स्मृति आज भी मनुष्य को `काम` और `मोक्ष` के बारे में सोचने के लिए बाध्य करती है।

२) <u>शिल्पी मेघराज आनंद</u> -

`खजुराहो का शिल्पी` की आधिकारिक कथा का प्रमुख पात्र है - शिल्पी मेघराज आनंद। वही इस नाटक का नायक है। नाटककार ने इस के अतीत की घटना द्वारा यह बताया है, कि वह `मोह के क्षण` में गिरा था और तब से उसकी आहत आत्मा शांति के लिए तरस रही है। अनजाने में उसके हाथों पाप तो हो गया है, लेकिन यही पाप उसके जीवन में पीडा बनकर उसे पल-पल घायल बनाता रहता है।

` उस बूढे आचार्य की कामार्त स्त्री ने मुझे सहज-सहज भाव से अपना शरीर सौंपा.... पर कविवर, मुझे लगा कि मैं उन सम्बन्धोंपर बलात्कार कर रहा हूँ जो ब्राह्मण के यज्ञोपवीत जैसे पवित्र हैं....कविवर यह है मेरी पीडा का यथार्थ। ` (पृ.३५) इस घटना के बाद यायावरी उसकी चर्या बन गयी है।

लेकिन जाने अनजाने में ` मोह के दाण की बात छिड जाती है जो उस घाव की पपडी फट जाती है और उससे रिसता हुआ दर्द उसे हरपल ` पापबोध ` कराता रहता है, जिससे शिल्पी की मुक्ति असंभव है - ` क्या कहा, मोह का दाण, मनुष्य के पतन की पहली फिसलन....ओफ्.... उसका स्मरण मत दिलाओ कवि....उसका स्मरण मत दिलाओ...`(पृ.३३)

यायावरी शिल्पी की चर्या है। और इस भ्रमण में उसने भारत की सभी शिल्पतीर्थों की यात्रा की है। इस भ्रमणने उसे एक समर्थ शिल्पदृष्टि प्रदा की है - ` भटकना अच्छा होता है, अलका, यायावरी तो मेरी भी चर्या है। कई वर्षोंसे भटक रहा हूँ, कश्मीर से कन्याकुमारी, द्वारिका से कोणार्क। भारतीय शिल्प के सभी तीर्थ देखे। ` (पृ.२६)

शिल्पी का एक स्वप्न है। वह ऐसा शिल्प संसार रचना चाहता है, जिसमें जीवन के हर पहलू का प्रामाणिक चित्रण हो। `....ऐसा शिल्प संसार जिसमें जीवन का हर प्रामाणिक चित्र हो, निर्भय हो....और उसे देखने के बाद प्रत्येक दर्शकको लगे जैसे कि वह संसार के भीतर और संसार के बाहर एक साथ परिक्रमा कर रहा हो। ` (पृ.२६)

यह शिल्पकार विलक्षण प्रतिभा का धनी है। वह पत्थरोंकी आत्मा को पहचानता है। उसका हर शिल्प कलात्मकताकी ऊँचाइयों को छूता है। जिस तन्मयता से उसने शिव-मूर्ति का निर्माण किया है, उसी तन्मयता से

काम-क्रीडा में रत प्रेमीयुगल का भी। शिशु को दुलारती हुई माता, अप्सराएँ, आखेट के दृश्य, पाँवसे काँटा निकालती हुई सुन्दरी, पत्र लेखन में तन्मय मुग्धा, प्रभुकी आराधना में लीन भक्त और अन्य अनेकानेक वैविध्यपूर्ण शिल्पों की रचना उसने अति सूक्ष्मतासे की है। इसका कारण यह है, कि वह हर चीज में सौंदर्य को देखता है। उसके अनुसार - ` किसी वस्तुका सच्चा अध्यात्म या अनुभव उस वस्तुमें निहित सौंदर्य में ही होता है। सौंदर्य कभी अपावन नहीं होता। उसका यथार्थ बोध हो जाने के बाद श्लील और अश्लील का भेद मन से समाप्त हो जाता है।` (पृ.३१)

हर चीज में सौंदर्य खोजनेवाला यह शिल्पी किसी सौंदर्य में डूब जाना नहीं चाहता। किसी चीज के संस्कारों से ग्रस्त होकर रह जाना उसे मंजूर नहीं, ` क्योंकि तटस्थता कलाकार को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करती है जो उसे सौंदर्य को सत्यसे बाँधने में सहायक होती है।` (पृ.३१)

सच्चे कलाकार की निर्भयता को शिल्पी के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है। राजसत्ता अथवा धर्मसत्ता के सामने नतमस्तक होकर कलात्मकता में बाधा लाना उसे मंजूर नहीं है। प्रत्यक्ष यशोवर्मन की पुत्री को प्रतिदर्श के रूप में माँगने में उसकी इसी निर्भयता के प्रमाण मिलते हैं। चंडवर्मा द्वारा भड़काये गए लोग उसे जानसे मारने पर तुले हुए है, लेकिन वह अपने निश्चयपर अटल है - ` चाहे मेरे प्राण चले जायें, पर मैं अपनी योजना में परिवर्तन नहीं करूँगा। अपने दर्शन को तिलांजली देने के बाद क्या रह जाएगा ?` (पृ.६८)

मंदिर शिल्प में मिथुन मूर्तियों को लेकर आपत्ति करनेवाले धर्मगुरूका सामना वह अत्यंत विनम्रता, धीरगंभीरता और साहस से करता है। अन्त में धर्मगुरू को उसकी बात माननीही पडती है।

शिल्पी का मन पापबोध से ग्रसित है, शायद इसीलिए उसने प्रायश्चित के रूप में तपश्चर्या की है। इस तपश्चर्या के बलपर वह अब उस ऊँचाई पर पहुँच

गया है, जहाँ उसे कोई छू नहीं सकता। वह विदेही, निर्मोही बन गया है। उसके बारे में ऐसा प्रवाद फैला है, कि उसके एक हाथ में नारी और दूसरे हाथ में मृदंग रहता है। इस बारे में शिल्पी का स्पष्टीकरण है - 'यह सच है, कि मैं स्त्री के आलिंगन सुख और सर्पदंश का भय दोनोंसे मुक्त हूं - यही मेरी तपस्या है। यही मेरी कला की उपलब्धि।' (पृ.३०)

संयोग से वह खजूरवाह में आ जाता है। उसके रूपमें यशोवर्मन को अपने स्वप्न का शिल्पी मिल जाता है। यशोवर्मन् शिल्पी की विदेहता और विलक्षणतापर विश्वास करते हैं और अपनी पुत्री को भी उसे प्रतिदर्श के रूपमें सौंपते हैं। राजकुमारी अलका यौवन सौंदर्य की धधकती मशाल है। और सहवास के कारण उसके मन में शिल्पी के प्रति आकर्षण निर्माण हो गया है। अनेक भाव-भंगिमाओं सहित और विविध मुद्राओं में वह उसके सामने प्रतिदर्श के रूपमें खड़ी रहती है, कभी वस्त्रों और साजसज्जा सहित तो कभी विवस्त्र, लेकिन शिल्पी कभी विचलित नहीं होता।

महाराज यशोवर्मन वृध्द गृहस्थ का वेश धारण करके उसके संयम की परीक्षा ले लेते हैं, लेकिन इस परीक्षा में वह खरा उतरता है - 'अब मैंनी अपनी आँखों से देख लिया है, कानों से सुन लिया है।....शिल्पी तुम धन्य हो, तुम्हारा योग धन्य है।' (पृ.६५) यशोवर्मन के ये उद्गार इसी के प्रमाण हैं।

शिल्पी निग्रह की सच्ची कसौटी संसार को ही मानता है। संसार से भागकर निग्रह की बात करना अपने आपसे धोखा देना है - यही उसका दर्शन है।

लेकिन पत्थरों की आत्मा को पहचाननेवाला शिल्पी मनुष्य की मन को ठीक तरह से नहीं पहचान सका है। राजकुमारी अलका उसकी मिथुन-मूर्तियों के लिए प्रतिदर्शा बन गयी इसलिए उसने अपनी नारी-सुलभ लज्जा को भी त्याग

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR
KOLHAPUR

दिया है। उसके साथ वह दिन-रात काम करती रही। सहस्त्रों मुद्राओं में उसके सामने आती रही और विभिन्न भावों को आँखों में उतारती रही। क्या वह कला की प्राप्ति के लिए ही ये सब कष्ट उठा रही थी? वास्तवमें अलका शिल्पीपर जी जानसे प्रेम करती है। अपनी मान-मर्यादा और लोक-लज्जा को भी उसने शिल्पीके लिए त्याग दिया है। वह शिल्पी से पूछती है - `पर... एक बताओ, शिल्पी, क्या हृदय में किसी बात की अनुभूति हुए बिना उसे आँखों में उतारना संभव है?` (पृ.८९) लेकिन अलका के प्रेम की गहराई को शिल्पी नहीं समझ सका। उसे यह आकर्षण क्षणिक महसूस हुआ।

अलका शिल्पी को `स्वार्थी` कहती है, क्यों कि उसे अलका का रूप मात्र पसंद आया। इसी आकार के आधार से उसने सहस्त्रों मूर्तियों को जन्म दिया। ये मूर्तियाँ मंदिर में लगाई गयीं और शिल्पी की प्रतिमा के मानदंड सिध्द हुई। लेकिन इस कार्य का प्रेरणास्त्रोत अलका मात्र जहाँ थी वहीं बनी रही। बल्कि यों कहा जा सकता है, कि वह कहीं की न रही। न नारी, न प्रिया, न राजकुमारी। उसका जीवन सूखे मरूस्थल की तरह बन गया।

जो शिल्पी `खो जाने में ही पाना है` मानता है, वह क्या थोडे क्षणों के लिए अपना अहं छोडकर, अपनी आध्यात्मिक ऊँचाई त्यागकर सामान्य धरातलपर नहीं आ सकता था? गुरूपत्नी के साथ शारीर संबंध रखना वह अनैतिक मानता है, लेकिन क्या यह बात उसके पहले ही समझ में नहीं आयी थी? जिस सहज आवाहन में उसका निग्रह बह गया वह, सहज आवाहन क्या इतनी अस्वाभाविक बात थी? इस पाप में वह अनायास ही जुड गया था। वस्तुत: यह न तो शिल्पी का दोष था न उस षोडशी का, जो उसकी गुरूपत्नी थी। कवि माधव के ये उद्गार - `मैं पूछता हूँ, धर्मगुरू, यदि वह स्त्री नैतिक मूल्यों से हटी, तो उसने कौन-सा अपराध किया? ७५ वर्ष का जर्जर आचार्य अपराधी नहीं? अपराधी हुई वह षोडशी?` (पृ.८९) इसी बात का प्रमाण देते हैं।

व्यक्ति के मन में अपनी अनायास चारित्रिक फिसलन को लेकर कुंठा का निर्माण होना स्वाभाविक है, लेकिन वह कुंठा भी निश्चित सीमा तक बनी रहती है। जीवन में कभी ऐसे भी क्षण आते हैं, जब मानवी मन की कुंठाएँ अपने आप नष्ट होती हैं।

शिल्पी के सामने प्रेम की भीख माँगने वाली अलका ऐसा ही प्रसंग प्रस्तुत करती है, जिसमें उसकी कुंठा धुल जाए। इसके आकर्षण में केवल कामासक्ति नहीं है। तब ऐसे कमल कोमल मन को तोडनेवाला शिल्पी अहंमन्य और अमानवीय लगता है, या ऐसा भी कहा जा सकता है, कि अपनी कुंठा के कारण वह जिस ऊँचाईपर पहुँचा है, वहाँ से लौटकर आने में उसे भय लगता है। भय इसलिए, कि कहीं वह फिर एक बार भावनाओंके स्त्रोत में बह न जाए। उसका अलका के प्रति यह कथन - ` अलका, मैं विवश हूँ, .... मैं फिरसे इस संसार में नहीं लौट सकता। ` (पृ.११) उसकी इसी दुर्बलता को उजागर कर देता है। ` शिल्पी भी अलका से प्रेम करता है, पर केवल उसके प्रतिदर्श से, जीवन के कटु अनुभव ने इस सत्य को स्वीकार करने का साहस उससे छीन लिया है। `[११] डॉ. रीताकुमार का यह मत इसी बात की पुष्टि करने वाला है।

शिल्पी प्रथमत: अलका की मूल प्रतिदर्श मूर्ति को मन्दिर में ऐसा स्थान देना चाहता था, जो आज तक किसी शिल्पी ने किसी को न दिया हो। उस मूर्ति को शिल्पी ने अंततक अपने पास ही रखा है। अंत में अपने हाथों से अपनी उस मूर्ति को नष्ट करने के लिए चली अलका के सामने वह उस मूर्ति को बाहों में भर लेता है और कहता है - ` इससे-इससे मुझे प्रेम है, अलका । ` (पृ.१०१)

मोह को जीतनेवाले शिल्पी को केवल एक मूर्ति अपने मोह में बाँध सकती है, वह इसलिए नहीं, कि वह एक अनुपम शिल्पकृति है, बल्कि इसलिए, कि वह अलका की मूर्ति है। जो शिल्पी प्रत्यक्ष अपने सामने आत्मसमर्पण के लिए तैयार

अलका को इनकार देता है, वही शिल्पी उसकी एक पत्थर मूर्ति से प्रेम करता है। उसका यह अंतर्विरोध से भर आचरण अनाकलनीय है।

शिल्पी के पात्र निर्माण में यह दोष खटकता है। शिल्पी के चरित्र का यह अंतिम अध्याय डॉ. शेष ने जान बूझकर इस तरह चित्रित किया है अथवा अनजाने में यह दोष रह गया है, यह एक रहस्य बन कर रह जाता है। शिल्पी कितनी भी आध्यात्मिक ऊँचाई पर क्यों न चला गया हो, मन को खरा नहीं लगता।

डॉ. शेष ने इस पात्र के चित्रण में थोडी अतिरंजितता से काम किया है। यह अतिरंजितता शिल्पी के संयत, गंभीर चरित्र में बाधा उत्पन्न कर देती है। शिल्पी के एक हाथ में नारी और दूसरे हाथ में भुजंग रहता है। शिल्पी की निर्मोही वृत्ति और उसकी मृत्युंजयता को दिखाने के लिए उसको एक साथ नारी और भुजंग के साथ दिखाना नाटक में कृत्रिमता ला देता है।

३) माधव -

माधव महाराज यशोवर्मन् के दरबार में राजकवि के पद पर आसीन है। उसके व्यक्तित्व में संवेदनशीलता और प्रतिभा एक साथ उपस्थित हैं। पहले दृश्य में वह यशोवर्मन की बैचेनी को एक ही नजर में भाँप लेता है - 'कवि की दृष्टि आनन्द पर चाहे देर से पडती हो, पर व्यथा पर अविलम्ब जाती है।' (पृ.१९)

महाराज यशोवर्मन् के स्वप्न का शिल्पी खोजने की जिम्मेदारी वह अपने ऊपर लेता है। वह शिल्पी की खोज में निकलने समय प्रतिज्ञा करता है, -' मैं तभी लौटूंगा, जब मेरी कल्पना का शिल्पी मेरे साथ होगा....अन्यथा....' (पृ.२१) उसकी इस प्रतिज्ञा से उसकी दृढप्रतिज्ञता और जिद्दी स्वभाव की पहचान होती है, जो एक कवि के कोमल व्यक्तित्व के एकदम विपरीत है।

कवि माधव यह जानता है, कि अलका शिल्पी से प्रेम करने लगी है। वह अलका के बारे में चिंतित है, क्यों कि वह शिल्पी की विदेहता के बारे में अनभिज्ञ नहीं है। उसे मालूम है, कि अलका का यह प्रेमपुष्प शिल्पी की उपेक्षा से अकालही मुरझा जाएगा और अलका चिरवियोगिनी बन कर रह जाएगी। वह अलका को सचेत करने का प्रयास करता है, लेकिन उसमें असफल बन जाता है।

अलका की भलाई की कवि माधव को चिंता इसलिए है, कि वह स्वयं अलका से प्रेम करता है। लेकिन उसके इस रहस्य का पता किसी को भी नहीं है। उसका प्रेम मूक है। उसने अपने प्रेम को कभी प्रकट नहीं होने दिया। केवल शिल्पी ही इस भावना को भाँप लेता है। शिल्पी के सामने यह रहस्य खुल जाता है - शिल्पी का यह कथन -`मैं तुम्हारी कविता में, तुम्हारी आँखों में अलका की प्रतिच्छाया बराबर देखता रहा।....आज तुमने अलका के भविष्य के विषय में व्याकुलता दिखाकर अपना रहस्य खोल दिया है।` (पृ.९६) इसी सत्य को स्पष्ट करता है।

माधव का प्रेम अपेक्षाहीन है। राजकुमारी अलका की अप्राप्यता ने शायद उसे मुखर नहीं होने दिया। माधव ने शायद इसी कारण से अपने प्रेम को रहस्य ही रहने दिया होगा। यह उसके चरित्र की महानता है, कि शिल्पी की ओर आकृष्ट होती हुई अलका को देखकर भी वह शिल्पी से ईर्ष्या भाव नहीं रखता। शिल्पी माधव की इस महानता को पहचानता है। `तुम्हें मेरे प्रति ईर्ष्या हो सकती थी, मेरे प्रति अविश्वास हो सकता था पर तुमने...कभी कुछ नहीं कहा। तुमने अपनी व्यथा का आभास तक नहीं होने दिया। मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, कवि।`(पृ.९७)

माधव ने कभी शिल्पी का द्वेष नहीं किया। बल्कि वह उसका हितैषी बन जाता है। शिल्पी के चारित्र्य पर लगने वाले कलंक को मिटाने के

लिए वह चंडवर्मा के चरित्र्य का पोल खोल कर रख देता है। यह उसके व्यक्तित्व की महानता का द्योतक है।

माधव का चरित्र, नाटक के अंतिम दृश्य में मर्यादा-पालन से एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

कवि माधव सच्चे अर्थ में एक कलाकार है और एक सच्चा इन्सान भी। इस पात्र को कथावस्तु में ज्यादा स्थान नहीं है, लेकिन अपने सौम्य परंतु आग्रही व्यक्तित्व, मूक, निरपेक्ष प्रेम और संवेदनशीलता से यह पात्र पाठकों के मन पर अपनी छाप छोड जाता है।

४) <u>चंडवर्मा</u> -

नाटक में राजशिल्पी चंडवर्मा खलनायक के रूप में चित्रित है। यह पात्र पहले, तीसरे और पाँचवे दृश्य में रंगमंचपर आता है।

राजशिल्पी होने पर भी चंडवर्मा में शिल्प प्रतिमा की कमी है। उसकी कई पीढियाँ चंदेलों की सेवा में रही हैं। इन पूर्वजों द्वारा चौसठ योगिनी मंदिर, मातंगेश्वर आदि मंदिर बनवाये गये हैं। महाराज यशोवर्मन `मोह के क्षण` से मानव को बचाने के उद्देश्य से जो मंदिर बनवाना चाहते हैं, वह इन मंदिरों जैसा नहीं, बल्कि कुछ विलक्षण वास्तुशिल्प होगा। चंडवर्मा कोई ऐसी विलक्षण योजना बनाने में असमर्थ है। पुरखों के कमाये नामपर आजीविका करनेवाले कर्तृत्वहीन लोगों का यह प्रतिनिधि लगता है। उसका कहना है कि, `...मन्दिर में जो भी आयेगा, वह प्रभु के दर्शन अवश्य करेगा....और प्रभु के दर्शन मात्र से वह समस्त राग-द्वेषों से मुक्त हो जायेगा।` (पृ.१८)

उसकी प्रतिभाहीनता के बारे में जानकारी अन्य पात्रों के संवादों द्वारा भी मिलती है। माधव का कहना है - ` ...आप सोचते हैं कि चण्डवर्मा - जैसा

कल्पनाहीन शिल्पी आपकी इच्छा पूरी कर सकेगा....वह शिल्पी किस कोटी का है, इसे आप स्वयं अच्छी तरह जानते हैं।` (पृ.१९) महारानी पुष्पा भी माधव से सहमत है - ` चण्डवर्मा भले ही शिल्पियों के वंश में उत्पन्न हुआ हो, लेकिन कला लेकर उत्पन्न नहीं हुआ। संपत्ति की भाँति कला सदैव उत्तराधिकार में नहीं मिलती, महाराज ` (पृ.१९) अलका ने भी चण्डवर्मा की बुध्दि का योग्य मूल्यांकन किया है। ` उसकी बुध्दि तो मूर्ति की तरह जड है, कला की तरह सजीव नहीं।` (पृ.५६)

एक सीधी-सादी योजना नकारी जाती है तब उद्दंड चण्डवर्मा जताता है कि - ` मुझे एक अवसर दिया जाना चाहिए महाराज। ` (पृ.४१)

शिल्पी चण्डवर्मा केवल प्रतिभाहीन उद्दंड ही नहीं, कुटिल षड्यंत्रकारी भी है। शिल्पी मेघराज आनंद द्वारा निर्मित विलक्षण वास्तु योजना को स्वीकारकर यशोवर्मन् उस पर ही वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर के निर्माण की जिम्मेदारी सौंपते हैं। वे शिल्पी आनंद को राजशिल्पी बनाना चाहते हैं, लेकिन शिल्पी नम्रतापूर्वक इन्कार करता है। चण्डवर्मा का हक छीनने की उसकी कामना नहीं है। फिर भी मंदिर निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य अपने हाथ से छीन लिया गया है, इस भावना से चण्डवर्मा पागल बन जाता है। ईर्ष्या और द्वेष से अंधा होकर वह शिल्पी मेघ आनंद के विरूध्द षड्यंत्र रचता है। चण्डवर्मा इन कारवाइयों की सूचना कवि माधवद्वारा चौथे दृश्य में मिलती है। माधव शिल्पी को सावधान करता है - ` चण्डवर्मा तुम्हारा सबसे बडा शत्रु है। वह अनेक प्रकार के षड्यंत्र कर रहा है। उसे डर है, कि जिस दिन यह मंदिर बन जायेगा, वह कहीं का न रहेगा। ` (पृ.६८)

चण्डवर्मा जनता को शिल्पी के विरूध्द इतना भडकाता है, कि लोग शिल्पीपर विलासी, चरित्रहीन और दुराचारी होने का आरोप करते हैं और अगर मिथुन-मूर्तियाँ मन्दिर में लगाई जाएँ तो वे शिल्पी की हत्या करने की

धमकी देते हैं। लेकिन शिल्पी मेघराज आनंद हिंसा के लिए प्रति हिंसा के सिध्दांत पर विश्वास नहीं करता। स्थितप्रज्ञ बनकर वह पहले की तरह अपना कार्य करता रहता है।

द्वेष से पागल चण्डवर्मा पाँचवें दृश्य में अंतिम आघात करने के लिए सज्ज बनता है। वह शिल्पी के अतीत को विस्फोटक रूप में धर्माचार्यों की सभा में सामने लाता है। ` यदि ऐसे दुराचारी व्यक्ति को मन्दिर-निर्माण का कार्य सौंपा गया, तो कोई आश्चर्य नहीं, कि वह हमारी वासना की हल्की मनोवृत्ति को छेडने के अलावा कोई काम नहीं करेगा, महाराज। ` (पृ.८९)

लेकिन उसका दाँव उलट जाता है। राजकवि माधव चण्डवर्मा के रहस्य का भण्डा फोड कर देता है। अंत:पुर की एक दासी के साथ चण्डवर्मा के अनैतिक सम्बन्ध को जाहिर करता है।

शिल्पी को दुराचारी कहनेवाला चण्डवर्मा स्वयं अत्यंत विषयासक्त आदमी है। ` ....चण्डवर्मा की तीन पत्नियाँ हैं।...वे सुन्दर भी हैं।...इसके बाद भी चण्डवर्मा एक साधारण दासी पर आसक्त क्यों हुए? ` (पृ. ८४) माधव द्वारा पूछा गया यह प्रश्न इसी बात को सिध्द करता है।

अपने अधिकारों के छीने जाने पर किसी व्यक्ति का क्रोधित होना स्वाभाविक है। लेकिन चण्डवर्मा संघर्ष के अत्यंत नीच स्तर पर उतर आता है। वह स्वयं ही पापी और दुराचारी है लेकिन शिल्पी को चरित्रहीन बतलाने का प्रयास करता है। उसके बारे में माधव के ये उद्गार - ` हममें से प्रत्येक अपराधी है। किसी का अपराध सामने आ जाता है, तो बचे हुए सभी अपराधी न्यायासन पर बैठकर उसका निर्णय सुना देते है, भीतर ही भीतर हम सब जानते हैं, कि हमारे निरपराध होने का दावा कितना खोखला है। ` (पृ.७९) अत्यंत सत्य प्रतीत होते हैं।

चण्डवर्मा प्रथमत: अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को मान्य नहीं करता - ` वह दासी मुझपर झूठा आरोप लगा रही है । कविवर माधव मेरे विरूध्द षड्यंत्र कर रहे हैं । ` (पृ. ८४) लेकिन अंतमें उसका पोल खुल जाता है । उसे भरी सभा में सिर नीचा करना पडता है ।

चण्डवर्मा का चित्रण दुराभिमानी और दुराचारी व्यक्ति के रूप में हुआ है । जो झूठे अहं से प्रेरित होकर सच्चे कलाकारकी कला को पहचानते नहीं और उनके विरूध्द द्वेष भावना रखते हैं । लेकिन ऐसे व्यक्तियों को जीवन में पराभव ही मिलता है । चण्डवर्मा के व्यक्तित्व में कलाकार की अपेक्षा द्वेष भावना से पूर्ण सामान्य आदमी ही दिखाई देता है ।

५) धर्मगुरू -

नाटक के चौथे दृश्य में दर्शाया है, कि मिथुन-मूर्तियों और कामासक्ति का अंकन करनेवाले दृश्यों की आवश्यकता पर विचार करने के लिए विभिन्न पंथों के आचार्य यशोवर्मन से मिलने के लिए आते हैं, तब वैष्णव पंथ के प्रमुख आचार्य के रूप में धर्मगुरू का भी उसमें समावेश रहता है ।

खजुराहो के मंदिरोंपर खुदी गयी मिथुन-मूर्तियाँ सदियों से मनुष्य के कौतूहल का विषय रही है । इसी कौतूहल के शमन के हेतु विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं । कदाचित् चंदेलों के समयमी इन मूर्तियों को लेकर विवाद खडे हुए होंगे । इसी कल्पना का आधार लेकर डॉ. शेष ने धर्माचार्योंकी सभा का दृश्य प्रस्तुत किया है । इस दृश्य में समाज के एक विद्वान धार्मिक आचार्य के रूप में धर्मगुरू का चित्रण हुआ है ।

धर्मगुरू वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर की विलक्षण वास्तु योजना तथा शिल्प को लेकर अत्यंत प्रसन्न हैं । वैष्णव आचार्य होने के नाते मंदिर में किया गया

भगवान विष्णु की लीलाओं का भव्य और सूक्ष्म चित्रण देखकर वे महाराज यशोवर्मन् को धन्यवाद देते हैं ।

लेकिन उनका मतभेद उन मिथुन-मूर्तियों को लेकर है । `कामासक्ति और वासना का इतना खुला प्रदर्शन क्या प्रजा में विकृति को प्रोत्साहन नहीं देगा ?....महाराज, क्या इन मूर्तियों का इन मन्दिरों मे रहना आवश्यक है ?` (पृ.७५) समाज मनपर विपरीत परिणाम करनेवाली इन मिथुन-मूर्तियों का स्थान मंदिर की साजसज्जा के रूप में हो इसपर उन्हें आपत्ति है ।

उनके अनुसार प्रजा की पाशवी भावनाओं को कुरेदनेवाले और उन्हें पतन की ओर ले जानेवाले कामसूत्र का सजीव चित्रण करने की कोई आवश्यकता नहीं है । उन्हें वर्तमान समाज की ही नहीं, बल्कि भविष्य के समाज की भी चिंता है । 'आज हम इन दृश्यों की कोई न कोई धार्मिक व्याख्या कर लेंगे । पर उन दिनों की सोचिए, जब केवल मन्दिर होंगे और व्याख्या नहीं होगी । ` (पृ.७८) आज हमारे मन में भी इन मूर्तियों को लेकर यही प्रश्नउउठते हैं । तब धर्मगुरु के बातों की सत्यता प्रमाणित हो जाती है ।

समाज और धर्म के प्रतिनिधि इस पात्र में धीरगंभीरता और विचारशीलता के दर्शन होते हैं । चण्डवर्मा द्वारा शिल्पीके चरित्रपर किये गए आरोपों पर उनकी प्रतिक्रिया अत्यंत संयत है ।

वे अपने राजा के कथनपर विश्वास करते हैं और उसे शिरोधार्य मानते हैं । शिल्पी के चरित्र के बारे में उनके मन में कोई किन्तु नहीं रहता । अपने प्रजापालक राजा पर उनका पूर्ण विश्वास है । यही बात उनके उद्गारोंसे प्रकट होती है - ` राजन, आपका कथन, आपका अनुभव हमारे लिए प्रमाण हैं । ` (पृ.७९)

राजशिल्पी चण्डवर्मा के षड्यंत्रो का पता चलनेपर धर्मगुरु स्तिमित हो जाते हैं ।

अंत में शिल्पी के मुख से मंदिर निर्माण के पीछे छिपे दर्शन विचार को जानकर वे आश्चर्यमुग्ध हो जाते हैं, उनका मन शिल्पी के प्रति गौरवकी भावना से अभिभूत हो जाता है। शिल्पी के दर्शन विचार जान लेनेपर उनकी प्रतिक्रिया बहुत मार्मिक है। शिल्पी की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं - ` इसका अर्थ यह हुआ, कि आपने सांकेतिक रूप से संसार से मोक्ष तक मनुष्य मन की यात्रा का रूपक रचा है। ` (पृ.८६)

इस पात्र की महानता इसमें है, कि शिल्पी के साथ तर्क में हारकर भी वे शिल्पी से कटुता नहीं रखते। धर्माचार्य होने के नाते वे इन मूर्तियों का कड़ा विरोध कर सकते थे। लेकिन जब वे अपने सभी प्रश्नों के उत्तर पाते हैं, तब अपना पराजय मानकर शिल्पी की सराहना करते हैं। अपनी सभी शंकाओंका निरास हो जाने के बाद मिथुन-मूर्तियों को लेकर उनका विरोध नष्ट हो जाता है। ` इन मूर्तियों के पीछे यदि इतना उदात्त भाव है, इतना महान दर्शन है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं `। (पृ.८७)

अपनी विचारशीलता, समाज के प्रति उत्तरदायित्व का भाव और विद्वत्ता के कारण यह पात्र गौण होकर भी स्मरणीय बन गया है।

६) तान्त्रिक -

तान्त्रिकाचार्य का पात्र शिवशक्ति तत्वज्ञानपर आधारित कापालिक पन्थ के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित है। नाटक में मंदिर शिल्प में मिथुन शिल्पों की सार्थकता और निरर्थकता को लेकर जो प्रसंग प्रस्तुत किया गया है, उसी समय यह पात्र रंगमंच पर आता है।

मिथुन-मूर्तियों के समर्थक तांत्रिक का धर्मगुरू के साथ मतभेद है। उसके अनुसार मनुष्य की कामासक्ति का चित्रण करनेवाले शिल्पों को मंदिर में अवश्य लगाया जाना चाहिए। क्योंकि उनके पंथ के अनुसार, ` योग और भोग के

बीच कोई विभेदक रेखा नहीं खींची जा सकती है । ` (पृ.७६)

उनके अनुसार सभी आत्माएँ शक्ति हैं, और शिव शक्ति के माध्यम से, साधक में क्रियाशील है । अत: साधक के जीवन के सभी कृत्य, यहाँ तक कि उसकी कामासक्तिमी प्रकृति का ही एक भाग है ।

चंदेलों के काल में उत्तरी भारत में शिवशक्ति तत्वज्ञान पर आधारित कौल (जिसका एक उपपंथ है ` योगिनी कौल `) पंथ में ऐन्द्रिय सुख को प्रमुखता दी गयी थी । इस मार्ग के प्रवर्तक मत्स्येंद्रनाथ थे (पृ.७७) और कापालिक पन्थों का बहुत प्रसाद हुआ था । प्रथमत: चंदेल राजा भी इसी तत्वज्ञान से प्रभावित रहे । इन मार्गोंकी साधनामें स्त्री-पुरुषों के संबंधों को एक धार्मिक विधान मात्र माना गया था । अत: मंदिरों के निर्माण में उन मिथुन शिल्पों का समावेश किया गया होगा । तांत्रिकाचार्य का पात्र इन्हीं विधानों की पुष्टि करने के हेतु प्रस्तुत किया गया है ।

७) पुष्पा -

महारानी पुष्पा महाराज यशोवर्मन की सहधर्मचारिणी है । भारतीय नारीका यह आदर्श रहा है, कि वह विवाह के पश्चात् अपने पति और पतिगृह के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित बन जाती है । पतिगृह की मानमर्यादा उनकी मानमर्यादा बन जाती है । स्त्री जाति का यह सहज, सुलभ परिवर्तन चिरंतन जिज्ञासा का विषय रहा है । महारानी पुष्पा भी इसके लिए अपवाद नहीं है । चंद्रात्रेय वंश की गरिमा उसके मन में गहराई से चित्रित है । इसीलिए उसे हेमवती के पतन की कथा सुनाते समय महाराज यशोवर्मन असमंजस में पड जाते हैं -
` तुम्हारे मन में हमारे राजवंश को लेकर अनेक प्रश्नवाचक चिह्न खडे हो जाएँगे । ` (पृ.१६)

लेकिन चंद्रात्रेय वंश की प्रतिष्ठा से जुडी महारानी पुष्पा का कथन है, -` आप सोचते हैं, कि मैं आपकी बात चारों ओर फैलाती फिरूँगी ? क्या चंद्रात्रेय वंश की प्रतिष्ठा से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ? ` (पृ.११)

पति के सुख-दु:ख में साथ देकर वह अपने पत्नी के कर्तव्यों का पालन करती है और महारानी होने के नाते अंत:पुर में चलनेवाले व्यवहारोंपर कडी नजर रखती है। नाटक के प्रारंभ में ही वह अंत:पुर की एक दासी द्वारा किए गए अनाचार के कारण अत्यंत उद्विग्न दिखाई देती है। वह उसे कडा दंड देना चाहती है।

हेमवती की कथा सुनकर उसका नारी हृदय हेमवती के प्रति सहानुभूतिसे पसीज उठता है। एक स्त्री होने के नाते बहिष्कृत गर्भवती विधवा द्वारा भोगे गए कष्टों को वह समझ सकती है।

अलका उसकी पालित कन्या क्यों न हो, अलका पर उसका सगी माँ के समान निश्छल प्रेम है। इसी प्रेम से उसका मातृहृदय अलका के भले-बुरे के बारेमें सदैव चिंतित रहता है। एक दक्ष माँ की तरह वह महाराज यशोवर्मन को सचेत करने में नहीं चूकती, कि - ` अलका अब छोटी नहीं रही महाराज, युवती हो गयी है----अब आपको उसके विवाह की चिंता होनी चाहिए। ` (पृ.२१)

लेकिन पितृसुलभ गर्व से महाराज यशोवर्मन उसकी बातों को हँसी में उडाते हैं, तब अपनी बेटी का सदा कुशल चाहनेवाली वह माँ स्पष्ट रूप से सूचित कर देती है, कि - ` महाराज स्त्री की दृष्टि को प्रमाण मानिए।---अलका का स्वयंवर जल्दी कराइए...नहीं....तो....वह मोह का क्षण....बिना पूर्व सूचना दिये आता है। ` (पृ.२४)

अलका का मूर्तिकला और चित्रकला की शिक्षा लेनाभी उसे पसंद नहीं है। वह शुरू से इन बातों का विरोध करती है।

महारानी पुष्पा का चरित्र अन्य नारीसुलभ भावनाओं का प्रतीक हैं, परंतु उसके चरित्र में सामान्य नारी की एक दुर्बलता भी छिपी है। स्वार्थी लोगों द्वारा बतायी गयी सभी बातोंपर वह सहजता से विश्वास करती है। शिल्पी मेघराज आनंद के प्रति ईर्ष्या से प्रेरित होकर राजशिल्पी चंडवर्मा जो मिथ्या बातें बताता है, उसे सच मान लेती है।

वस्तुत: धूर्त चण्डवर्मा, शिल्पी को बदनाम करने के हेतु उसके अतीत के बारे में प्रदाोमक रूप से कथन करता है। लेकिन माँ की ममता अपनी बेटी के भविष्य के प्रति चिंतित होकर, सत्य को अनदेखा करती है। वह आवेश में आकर शिल्पी पर दुश्चरित्र और व्यभिचारी होने के आरोप करती है। ऐसे व्यक्ति के पास अलका का आधी रात तक रहना लोगों के मन में अलका के चारित्र्य के प्रति संशय जगा देगा, यही उसकी चिंता है।

लेकिन जब शिल्पी की विदेहता का प्रमाण उसे स्वयं अलका दे देती है, तब उसे चण्डवर्मा की ईर्ष्या भावना का पता चलता है। वह अपनी गलती मान लेती है। - ` महाराज, उस शिल्पी के प्रति मेरी कोई द्वेष भावना नहीं है।... मैं तो लोग क्या सोच रहे हैं, यही बात आपको बताना चाहती थी। ` (पृ.५७)

यह पात्र केवल तीसरे दृश्य तक ही रंगमंच पर आता है। नाटक में महारानी पुष्पा के चरित्र के लिए जगह नहीं हैं, लेकिन जितनी देर भी यह पात्र रंगमंच पर आता है, वह एक न्यायप्रिय महारानी, ममतामयी माँ और कर्तव्यदक्ष पत्नी के रूप में विचरता है।

८) <u>अलका</u> -

` खजुराहो का शिल्पी ` में सबसे प्रभावी चरित्र है - राजकुमारी अलका का। महाराज यशोवर्मन की यह पालिता कन्या, उनकी अत्यंत लाडली पुत्री है। अलका का रूप-गुण संपन्न व्यक्तितत्व ही कुछ ऐसा है, कि ऐसी संतान को पाकर

माँ-बाप स्वयं को धन्य समझें। राजकुमारी होने के नाते वह सभी शास्त्र और विद्याओंका अध्ययन कर चुकी है। वह केवल विद्यागुण मंडित ही नहीं, सौंदर्य से भी परिपूर्ण है। ` अलका संसार की सबसे सुन्दर कन्या है....वह कलाओं में पारंगत है....और सबसे बड़ी बात यह है, कि वह मुझे बहुत प्रिय है। ` (पृ.२१) यशोवर्मन के ये उद्‌गार एक पिता के अपनी संतान के प्रति अंधे प्यार से नहीं निकले हैं।

वस्तुत: अनेक राजकुमार इस चिंता में घुले जा रहे हैं, कि अलका उन्हें कैसे मिले। उसकी इसी कंचन काया और भावपूर्ण मुस्कान देखकर विलक्षण शिल्पी मेघराज आनंदने प्रतिदर्श के रूप में उसकी माँग की है। महाराज यशोवर्मन अपनी पुत्री के असाधारण रूप और बुद्धि वैभव को पहचानते हैं - ` अलका के सौंदर्य का वरण करने की पात्रता मुझे किसी राजकुमार में नहीं दिखाई देती। ` (पृ.२२)

अनेक कलाओं में पारंगत होने पर भी अलका की ज्ञानलिप्सा अभी कम नहीं हुई। - ` पिताजी आपके आशीर्वाद से मुझे शास्त्र की शिक्षा मिली है....संगीत और नृत्य की शिक्षा मिली है। ` (पृ.२३) अलका अब चित्रकला और मूर्तिकला सीखना चाहती है। माँ की आपत्ति पर उसका उत्तर है - ` माताजी, मैं स्वयं मूर्तियाँ तो बनाऊँगी नहीं....मैं उस कला के रहस्य को, उसकी आत्मा को पहचानना चाहती हूँ। ` (पृ.२३) तीसरे दृश्य के अंत में राजकुमारी अलका द्वारा मालकौंस राग में रचना तैयार करने की सूचना उसके इसी कला-प्रेम को सूचित करती है।

राजकुमारी अलका के व्यक्तित्व निर्माण में डॉ. शेष ने नम्रता के साथ चातुर्य की भी योजना की है। ` पर पिताजी, स्वयंवर तो मेरा अपना अधिकार है....पिताजी, जब मेरी अधिकार-भावना बलवती होगी, मैं अवश्य ही आपकी कर्तव्यभावना की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूँगी। ` (पृ.२३) ये मार्मिक बाते उसकी चतुरता का प्रमाण है।

शिल्पकला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह खजुराहो में आये विलक्षण शिल्पी मेघराज आनंद के यहाँ जाती है। वह अलका को प्रतिदर्श बनाकर अनेकानेक मूर्तियों का निर्माण करता है। शिल्पी के कहनेपर वह विविध भावमुद्राओं में, कभी वस्त्रालंकार से सज्जित, तो कभी वस्त्रविहीन होकर उसके सामने पहरों खड़ी रहती है। प्रसंगवश वह मध्यरात्रि तक शिल्पी की शिल्पशाला में काम करती रहती है। वस्तुत: एक राजकुमारी और रूपयौवन संपन्न होने के नाते उसे अपनी मर्यादा का भी पालन करना है, लेकिन इस विलक्षण शिल्पी की प्रतिभा से वह इतनी अभिभूत हो गयी है, कि बाकी सारी बातों को वह अनदेखा कर देती है। सत्य तो यह है, कि अनेक दिनों के साहचर्य से वह शिल्पी आनंद प्रेम करने लगी है।

शिल्पी के अतीत के बारे में जानकर, उसके प्रति सहानुभूति का भाव जागृत होना उसके मन में है। उसके विलक्षण शिल्पसंसार के स्वप्न को जानकर वह उस शिल्प संसार में रंग भरने के लिए उसका मन:पूर्वक साथ देती है। अनेक बार वह शिल्पी के सामने अपनी भावनाका प्रदर्शन करती है, लेकिन हर-बार शिल्पी की रूखाई ही उसे झेलनी पडी है। `तुम्हारे उत्तर न देने में ही मुझे अपना उत्तर मिल गया है। लेकिन मैं क्या करूँ शिल्पी ? मैं तुम्हारी तरह विदेह नहीं हूँ।` (पृ.६३) शिल्पी ने हर बार उत्तर देना टाल दिया अथवा अलकाको ही अन्य कामों मे उलझा दिया है। पर अलका का सहज नारी मन एक ही बात की चाह करता है, वह है शिल्पी का प्रेम `मैं अपने आप को रोक नहीं पाती, और मेरी आँखे किसी नवसिखिए गुप्तचर की तरह अनजाने में ही अपना सब भेद खोल देती हैं।` (पृ.६३)

शिल्पी ने अलका की इस गहरी भावना को कभी समझा ही नहीं। वह उसकी बातों में केवल क्षणिक आकर्षण के भावों को देखता रहा। लेकिन अलका सचमुच ही उसके प्रति जी-जानसे समर्पित हो गयी थी।

वस्तुत: वह एक राजकुमारी है और साथ में रूपसंपन्न भी है। इन हथियारों के बल पर वह जिसे चाहे पा सकती थी। लेकिन शिल्पी के व्यक्तित्व से वह अभिभूत हो गयी है। उसका यह आकर्षण कामासक्ति मात्र नहीं है। वह सोचती है, कि उसका अपना शिल्पी कभी न कभी उसकी भावना की सच्चाई को जरूर भाँप लेगा, पर ऐसा कभी नहीं हुआ - ` मैं सोचती थी कि कहीं-न-कहीं हरियाली होगी, कहीं-न-कहीं तरलता होगी।....पर नहीं, इन पत्थरों के सम्पर्क ने तुम्हें पत्थरों के ही संस्कार दिये।` (पृ. ९८)

अलका के लिए जीवन अब केवल अनंत वेदनाओंका भोग है। शिल्पी के साहचर्य ने उसे समाजमें बदनाम कर ही दिया है और शिल्पी को अब उसकी आवश्यकता नहीं रही। मानो यही उसके जीवन का अंत है। उसे सान्त से अनंत बनाने का, मंदिर शिल्प में शीर्ष स्थान देने का वचन देनेवाले शिल्पी ने उसे कहीं का न छोडा। शिल्पी उसकी मूल प्रतिदर्श मूर्ति को किसी ऊँचे स्थान पर स्थापित करना चाहता था, वह भी वही की वही पडी रही। शिल्पी के अनुसार ` हर एक मूल प्रतिदर्श की यही नियति है।` (पृ.९८) यही नियति अलका की भी है। उसका जीवन अब एक अनाम्कि दर्द मात्र बनकर रह गया है। उसका यह टूट जाना, उसके व्यक्तित्व का बिखराव केवल शिल्पी के कारण ही है। फिर भी वह मानी व्यक्तित्व शिल्पी की दी हुई अनन्त वेदना को चुपचाप भोगने के लिए तैयार है, `....ठीक है, मुझे अनन्त व्यथा भोगनी है - भोगूँगी - भोगूँगी - नहीं - ` (पृ. ९८) जब पीडा असह हो जाएगी तब वह मृत्युका आलिंगन करेगी, यही बात उसके अपूर्ण उद्‌गारों से ध्वनित होती है।

शिल्पी की विदेहता का प्रमाण देने के लिए लेखक ने एक तरह से अलका के व्यक्तित्व का अंत ही कर दिया है। अंत में तो शिल्पी की इस विदेहता के बारे में शंका भी उपस्थित हो जाती है। फिर अलका का यह व्यर्थ बलिदान कहाँ तक उचित है ? जो व्यक्ति अलका की मूर्ति से प्रेम करता है और उसे नष्ट

नहीं करना चाहता, वह क्या वास्तव में अलकाही से प्रेम नहीं करता ? फिर उसकी निर्मोहिता का शिकार अलका ही क्यों बनी ? एक स्वाभिमानी रूप-गुण संपन्न यौवना का यह भीषण अंत प्रेक्षकों के मन में सहज सहानुभूति पैदा कर देता है।

अलका के बारे में डॉ. सुरेश व डॉ. वीणा गौतम ने लिखा है - ` चन्द्र किरणों में टंका, चांदनी में नहाया उसका यौवनी संयम, रूप रश्मियों में बंधा उसका मुख-गीत, समर्पण में विचलित उसका गजल मन, तृप्त होने को आकुल उसकी मन्त्रआत्मा, प्रतीक्षा में रत उसके खंजन राजीव नयन, धूप-गंधसी देह-महक, गदराये वक्ष का तटतोड समुद्री उबाल, चन्दन चर्चित स्वप्न और प्रसाद के ` स्कंदगुप्त ` की देवसेना सी स्वयं अलका सभी खाक हो गये जब ग्रीष्म ऋतु से शिल्पी सूर्य के मध्याह्न तेज में उसके भाव-जगत के तंतु जडसे झुलस गए।`१२

लेखक द्वारा इस पात्र पर अन्याय तो हुआ है लेकिन लेखक ने इस पात्र के निर्माण में ऐसी सूक्ष्मता से काम लिया है कि यह चरित्र एकदम प्रभावकारी बन गया है। प्रेक्षक-पाठक की स्मृति में यह पात्र चिरकाल बना रहने की क्षमता रखता है। अपनी सहज संवेदनशीलता, ममत्व और मानवीय इच्छा-आकांक्षाओं सहित आया यह चरित्र अंत में प्रेक्षकों-पाठकों के मन में करुणा के स्त्रोतों को निर्माण करने में समर्थ है।

` खजुराहो का शिल्पी ` में चरित्र
चित्रण की प्रणालियाँ :

नाटक में चरित्र सृष्टि करते समय चरित्रांकन की विविध प्रणालियाँ काम में लायी जाती हैं। विभिन्न प्रणालियों का आश्रय लेकर नाटककार नाटकीय पात्रों का प्रकाशन और विकास करता है, तथा उनकी विशिष्ट गतिविधियाँ, कार्यव्यापार आदि अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ प्रेक्षकों के समक्ष रखता है।

पात्रों के चारित्रिक गुणावगुणों का परिगणन करने मात्र से चरित्र चित्रण सम्पन्न नहीं होता अपितु उसके हर पहलु को उजागर करने के लिए नाटकीय प्रसंगों और संदर्भोंकी सृष्टि करनी पड़ती है। तब ही वे चरित्र सजीव और मांसल रूप में उभरते हैं।

` खजुराहो का शिल्पी ` में डॉ. शेष ने विविध माध्यमोंद्वारा चरित्रांकन किया है -

१) पात्रों के बाह्य स्वरूप की चर्चा द्वारा -

पात्रों के बाह्य स्वरूप की चर्चा द्वारा उनकी आंतरिकता की किंचित् पहचान होती है। बाह्य स्वरूप में पात्रों का बाह्य रूप, आकृति, मुखमुद्रा, भावभंगिमा, वेषविन्यास और आंगिक चेष्टाएँ आदि का समावेश है।

` खजुराहो का शिल्पी ` के प्रारंभ में शक्तिशाली राजा यशोवर्मन की उद्विग्न मन:स्थिति को दर्शाया गया है। उसकी व्याकुलता को दिखाकर हेमवती के प्रति उसके मनमें उत्पन्न सहानुभूति का चित्रण किया है। उसका राजमहल के मंत्रणाकक्ष में उद्विग्न होकर घूमना उसकी बेचैन मन:स्थिति का द्योतक है।

२) कार्यव्यापार द्वारा -

नाटक में पात्रों के विशिष्ट क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप ही उनका उत्थान-पतन होता है। उनके क्रिया कलाप ही उनके अस्तित्व का प्रमाण होते है। ` खजुराहो का शिल्पी ` में महाराज यशोवर्मन द्वारा मंदिर निर्माण का संकल्प एक ऐसा कार्य है, जो उनके चारित्र्य को ऊँचाई प्रदान करता है।

शिल्पी का अपनी गुरुपत्नी के साथ अनिच्छापूर्वक संबंध एक ऐसी क्रिया है, जिसके कारण ही प्रथमत: उसका चारित्रिक अध:पतन हुआ था। अलका का

लोकलाज और राजकुल की मर्यादाओंका उल्लंघन कर शिल्पी के सामने प्रतिदर्श के क्रम में मध्यरात्रि तक खडे रहना, शिल्पी के प्रति उसके अनुराग का द्योतक बन गया है ।

३) भाषा और संवाद द्वारा -

भाषा और संवादके द्वारा भी चरित्रों का उद्घाटन किया जा सकता है । स्वयं पात्र द्वारा उसकी विशिष्ट क्रियाओंका विश्लेषण, उसका मानसिक द्वंद्व, दूसरे पात्रों के प्रति उसका व्यवहार तथा दूसरे पात्रों द्वारा उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण अथवा उसकी रूचि-अरूचि की व्याख्या करना आदि बातें नाटक में संवादों द्वारा ही व्यक्त होती रहती है ।

प्रथम दृश्य में कवि माधव के जिद्दी और हठी स्वभाव का परिचय महाराज यशोवर्मन और महारानी पुष्पा के संवादों द्वारा किया गया है - ` माधव भी चला गया । कहीं वह न लौटा तो....बडा हठी स्वभाव है उसका । ` (पृ.२१)

दूसरे दृश्य में शिल्पी का यह कथन - ` क्या कहा, मोह का क्षण । मनुष्य के पतन की पहली फिसलन....ओफ, ...उसका स्मरण मत दिलाओ कवि. उसका स्मरण मत दिलाओ....वह क्षण....` (पृ.३३) उसके व्यक्तित्व में छिपी ` पापबोध ` की भावना को उजागर कर देता है ।

तीसरे दृश्य में माधव के संवादोंद्वारा शिल्पी के स्वाभाविक वैशिष्ट्यों पर रोशनी डाली गयी है - ` वैसे वह कलाकार तो महान है, पर आदमी बहुत विचित्र है - जिद्दी और समझौता न करनेवाला । ` (पृ.४२) ` महाराज, दूसरी बात यह है कि वह बहुत मुँहफट है ।` (पृ.४२) ` आपके चंडवर्मा की तरह वह आत्मप्रचार में विश्वास नहीं करता, महाराज । ` (पृ.४२)

यहाँ शिल्पी मेघ आनन्द की प्रसिध्दि पराङ्मुखता के साथ चण्डवर्मा की आत्मप्रचार की वृत्ति का एक साथ परिचय होता है ।

४) शेषपूरक पध्दति द्वारा -

डॉ. शेष ने इस नाटक में ` शेषपूरक ` पध्दति को भी अपनाया है । गौण पात्रों के माध्यम से प्रमुख पात्रों के जीवन और कार्यों पर टिप्पणी करना और उन्हें व्याख्यात करते जाना शेषपूरक पध्दति की विशेषता मानी जाती है ।

` खजुराहो का शिल्पी ` मे शेषपूरक पध्दति द्वारा चरित्र चित्रण का उदाहरण नाटक के दूसरे दृश्य में कवि माधव और एक व्यक्ति के बीच के संवाद में देखा जा सकता है -

व्यक्ति का स्वर : क्षमा करें कविवर, मैं भीतर नहीं जाऊँगा...
मुझे डर लगता है ।
माधव का स्वर : क्यों ?
व्यक्ति का स्वर : आप नहीं जाने कविवर, वह बहुत भयानक आदमी है । एक दिन मैंने उसकी एक बाँह में डरावना सर्प और दूसरी बाँह में एक स्त्री को देखा था... नहीं कविवर, आप ही द्वार खटखटाइए...`(पृ.२९)

विलक्षण शिल्पी के संबंध में फैली चित्रविचित्र प्रवादों का परिचय प्रेक्षकों-पाठकों को दे देते हैं । यहाँ पर शिल्पी के कार्योंपर एक विशिष्ट व्यक्तिद्वारा टिप्पणी की गयी है ।

निष्कर्ष :

` खजुराहो का शिल्पी ` के चरित्र केवल ऐतिहासिक हैं,ऐसा नहीं कहा जा सकता । कुछ पात्र नाटककार की कल्पना की उपज हैं । लेकिन उनकी

अनैतिहासिकता कहीं बाधा नहीं उत्पन्न करती । ऐतिहासिक परिवेश के साथ उनको अत्यंत कुशलतापूर्वक जोडा गया है । वैसे देखा जाए, तो गंभीर कथ्य को इस नाटक में महत्वपूर्ण स्थान है । और नाटक के पात्र इसी कथ्य को प्रेक्षकों के सामने रखने के माध्यम बने हैं । अत: उनका स्थान गौण है । लेकिन कथ्य की महत्ता के नीचे ये पात्र दबे नहीं हैं । उनके चरित्रों का विकास स्वाभाविकता से हुआ है । शाश्वत युग-सत्य को संप्रेषित करनेवाले ये पात्र अपनी-अपनी स्वतंत्र चारित्रिक विशेषताओंको लेकर साकार हुए हैं । एक भी पात्र असफल अथवा व्यर्थ नहीं है । प्रत्येक पात्र अपना जीवन स्वयं जीता है और साथ में ऐसी नाटकीय स्थितियाँ निर्माण करता है, जिनमें नाटक के अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट हो सकें ।

नाट्य-शिल्पविधि :

` खजुराहो का शिल्पी ` के संभाषण -

` खजुराहो का शिल्पी ` के संवाद संक्षिप्त लेकिन अर्थगर्भ है । इन संभाषणों द्वारा नाटककारने चरित्रों के उद्घाटन के साथ प्रत्येक चरित्र के स्वतंत्र दर्शन को व्यक्त किया है । पात्रों के बाह्य और आंतरिक विशेषों का उद्घाटन उनके संभाषणोंद्वारा किया गया है । कभी पात्र स्वयं ही अपने व्यक्तित्व के पहलू अपने भाषणों के माध्यम से खोलते रहते हैं।

नाटक के संभाषण कथावस्तु को आगे बढाने में भी सहायक सिध्द हुए हैं ।

` खजुराहो का शिल्पी ` के संभाषणों का महत्वपूर्ण वैशिष्टय यह है, कि उनमें दार्शनिकता और काव्यात्मकता - दोनों के दर्शन एक साथ होते रहते हैं । वास्तव में जहाँ दार्शनिकता का संदर्भ आता है, वहाँ भाषा अत्यंत

दुर्बोध बन जाती है, लेकिन `खजुराहो का शिल्पी` के संभाषण इसके लिए अपवाद हैं। जगह-जगह पर इस के उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे -

शिल्पी : `व्यथा पत्थर में नहीं होती, वह मनुष्य के मन में होती है। मनुष्य केवल अपनी व्यथाका चितेरा होता है, उसकी व्यथा का शतदल कभी रंगों में खिलता है, तो उसे हम चित्र कहते हैं, कभी नाद और ताल में, तो उसे हम संगीत कहते हैं, और जब पत्थरों में खिलता है...तब शिल्प...(पृ.२५:

जिस सहजता से संवाद के माध्यम से नाटककार ने मानवी व्यथा को व्याख्यात किया है वह नि:संशय ही सराहनीय है।

पाँचवे दृश्य में -

धर्मगुरु : `मोह का क्षण` तो व्यक्ति के जीवन में आता है महाराज। उसे इतना सार्वजनिक रूप देने की क्या आवश्यकता ?

शिल्पी: धर्मगुरु, व्यक्ति ही प्रभु के चरणों में जाता है, व्यक्ति ही पतित होता है, व्यक्ति ही पतन से उपर उठता है और व्यक्ति ही मोह को जीतता है। ` (पृ.८२)

अथवा -

शिल्पी : क्या भविष्य में कभी काम-वासना को इस संसार से अलग किया जा सकेगा ? धर्मगुरु, हम लाख प्रयत्न करें, पर काम सदैव ही संसार की गतिशीलता का केन्द्रीय भाव होगा। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में उस समय भी मोक्ष के पहले काम होगा। मनुष्य मन की दो ही मन:स्थितियाँ होंगी - एक सकाम और दूसरी निष्काम F मनुष्य संसार

से हमेशा मुक्त होने का प्रयत्न करेगा, पर मोह के दाण उसे हमेशा घेरेंगे ।

माधव : धर्मगुरू, शिल्पी का दर्शन विचारणीय है । हमें ऐसे अध्यात्म की आवश्यकता है, जो केवल वाणी तक सीमित न रहे, हमारे आचरण और स्वभाव का भी अंग बने । खजुराहो की ये मिथुन-प्रतिमाएँ आज के लिए ही नहीं, वरन् भविष्य में भी चेतावनी का कार्य करेंगी । `(पृ.८७)

उपर्युक्त संवादों में मानव जीवन में ` काम ` की अपरिहार्यता को स्पष्ट किया गया है ।

मानसिक द्वन्द्व की अवस्था में मनुष्य कभी लंबे भाषण नहीं देता । भावनावेग के कारण उसके कथन का प्रवाह प्राय: खण्डित होता है । डॉ. शेष ने नाटक के संवादों में पात्रों के मन की भाववशता को व्यक्त करने के लिए खण्डित वाक्यरचना से काम लिया है । उदाहरणार्थ -

शिल्पी : तो सुनो....चाहो तो कविता लिखो....मेरे आचार्य, नाम नहीं बताउँगा उनका....अत्यन्त वृध्द थे, ऐसी वृध्दावस्था जिसमें मनुष्यने सन्यास लेना चाहिए....पर उन्होंने विवाह किया....वह भी एक षोडशी से.... अलभ्य सौंदर्य....यौवन का पहाडी झरना...उसे वृध्दा-वस्था का जर्जर-रेतील बाँध रोकना चाहता था...बताओ कवि, वह रूक सकता था....वह अपनी सहज गति चाहता था....वह कामार्त स्त्री....उसका दाहक यौवन... कामना का वह मायावी कुहक-जाल मेरे विवेक पर छा गया... वह मोह का दाण....मैंने अपने आचार्य के साथ प्रतारणा की... (पृ.३५)

अथवा पृ. ९४ पर माधव का यह कथन -

`हाँ शिल्पी, वह तुमसे प्रेम करती है। पर तुम....सदैव एक चट्टान की तरह निस्पन्द और अटल रहे।....तुमने स्त्री का मन कभी नहीं पहचाना। तुम उसमें केवल आकार देखते रहे।....अलका ने तुम्हारे शिल्प को जीवन दिया, पर तुमने उसके जीवन को मरुस्थल बना दिया।`

और पृ. ९९ पर अलका का यह कथन -

`....यह संसार तो कमजोर लोगों का है - गिरने-उठने - फिर गिरनेवालों का है। ...यहाँ भूख लगती है, शरीर तपता है। इसलिए, शिल्पी अध्यात्म छूटते देर नहीं लगती।....संसार बडी कठिनाई से छूटता है। ठीक है, मुझे अनन्त व्यथा भोगनी है - भोगूँगी - भोगूँगी - नहीं` आदि इसी के उदाहरण हैं।

`खजुराहो का शिल्पी` में कुछ बातें पृष्ठभूमि में चलती रहती हैं। जैसे चंद्रवर्मा का अंत:पुर की दासी के साथ अनैतिक संबंध, मंदिर का निर्माण, मंदिर देखने के लिए आनेवाले लोगों की प्रतिक्रियाएँ - ये घटनाएँ प्रत्यक्ष मंचपर घटित नहीं होती। इन घटनाओं की सूचना संवादोंद्वारा ही मिलती है। उदाहरणार्थ -

पहले दृश्य के प्रारंभ में -

पुष्पा : (प्रवेशती हुई) महाराज, मैंने उसे निकालने का निर्णय किया है। इच्छा तो थी कि और कडा दण्ड दूँ।

यशोवर्मन: नहीं पुष्पा, उसे क्षमा कर दो....मेरा कहना मानो और उसे क्षमा कर दो।

अथवा तीसरे दृश्य के प्रारंभ में -

यशोवर्मन : कविवर, मंदिर की प्रगति तो बडी संतोषजनक है । यदि कोई विघ्न नहीं आया, तो आगामी वर्ष तक मंदिर अवश्य पूरा हो जायेगा ।

माधव : हाँ, महाराज, शिल्पी दिन-रात काम कर रहा है । मजदूरों की संख्या भी बढा दी गई है ।

अंतिम (छठवें) दृश्य में भी मंदिर देखनेवाले लोगों की प्रतिक्रियाओं की सूचना संवादों द्वारा मिलती है -

यशोवर्मन: मैं पिछले प्रहरसे, वेश बदलकर, वहाँ चुपचाप खडा रहा । प्रात: से हजारों दर्शक आ चुके हैं । मैं उन्हें ध्यान से देखता रहा । सचमुच एक विलक्षण अनुभव था ।

माधव : आप किसी निष्कर्षतक पहुँचे, महाराज ।

यशोवर्मन : हाँ कविवर, मुझे लगा, इन दर्शकों के कई वर्ग हैं । हर एक वर्ग अपनी-अपनी इ दृष्टि से सब-कुछ देखता है... (पृ.९१)

` खजुराहो का शिल्पी ` के संभाषण कथावस्तु के प्रवाह को आगे बढाने में अवश्य सहायक बन गए हैं । नाटक में अनेक जगहों पर संभाषणों द्वारा आगे घटित होनेवाली घटना के बारे में सूचित किया गया है । ऐसे स्थानोंपर प्रेक्षकों के मन में अनायास ही कौतूहल की निर्मिति होती है । इस का उदाहरण चौथे दृश्य में मिलता है ।

माधव : शिल्पी, तुम सच कहते हो...हममें से कोई दूध का धुला नहीं है । हममें से प्रत्येक अपराधी है । किसी का अपराध सामने आ जाता है, तो बचे हुए सभी अपराधी न्यायासन पर बैठकर अपना निर्णय सुना देते हैं, भीतर ही भीतर हम सब जानते हैं, कि हमारे निरपराध होने का दावा कितना खोखला है ।

शिल्पी : पर मैं उस अपराध के विषय में जानना चाहता हूं, जो चण्डवर्मा ने किया है ।

माधव : उसे तो मैं कल धर्माचार्यों की सभा में ही बताऊँगा ।..

यहाँपर आगे आनेवाली घटनाओं की सूचना मिलती है । और साथ ही उस घटना के बारे में कुतूहल का भाव भी अनायास निर्माण होता है ।

डॉ. वीणा और डॉ. सुरेश गौतम ने इन संवादों की विशेषता बताते हुए लिखा है, `डॉ. शेष के नाटकों की मंचीय सफलता का श्रेय तर्क-वितर्क के आधार पर हुई संवाद रचना को भी जाता है । पहले प्रश्न उठाना, फिर विवाद और फिर विवाद । विभिन्न तर्क दे कर मान्यता की स्थापना और विपक्ष द्वारा तर्क देकर खण्डन करने की विशेषता लगभग उनके सभी नाटकों में मिलती है ।`[१३] `खजुराहो का शिल्पी` भी इसके लिए अपवाद नहीं है । अलका का शिल्पी की स्थितप्रज्ञता के प्रति आश्चर्य और शिल्पी द्वारा उसके आश्चर्य का शमन, तथा धर्मगुरु, तांत्रिक, यशोवर्मन, शिल्पी, कवि माधव और चण्डवर्मा के वे संवाद जिसमें धर्म और नैतिकता के अवमूल्यन की चर्चा करते हुए मिथुन-मूर्तियों की प्रासंगिकता सिध्द करते है - कुछ ऐसे प्रसंग हैं जहाँ तर्क मिश्रित संवादों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना देखी जा सकती है ।

`खजुराहो का शिल्पी` के संवादों का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है उनकी सूक्तिमयता । नाटक के अध्यात्मिक कथ्य को स्पष्ट करने के लिए भाषा ने सहज सूक्तिमय रूप धारण किया है । उदाहरणार्थ -

`विश्वामित्र हमेशा चला जाता है, मेनका सदैव यहीं रह जाती है ।` (पृ.१३)

`मनु चला जाता है, लेकिन श्रध्दा रह जाती है ।` (पृ.१३)

`युध्द-लिप्सा कभी राजा को इतिहास-पुरूष नहीं बनाती ।` (पृ.१९)

` संपत्ति की भाँति कला सदैव उत्तराधिकार में नहीं मिलती ।` (पृ.१९)

` कवि की दृष्टि आनंदपर चाहे देर से पड़ती हो, पर व्यथापर अविलम्ब जाती है । ` (पृ.१९)

` कवि की कल्पना सदैव सत्य का छोर डाले रहती है ।` (पृ.२०)

` तटस्थता कलाकार को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करती है, जो उसे सौंदर्य को सत्य से बाँधने में सहायक होती है ।` (पृ.३१)

` जब विवेक सो जाता है, तब पतन का रास्ता बहुत ही सुन्दर लगने लगता है, शायद वही मोह का क्षण है । ` (पृ.४९)

` शरीरपर आक्रमण करने से केवल हाड-माँस आहत होते हैं, पर चरित्रपर आक्रमण करने से आत्मा आहत हो जाती है । ` (पृ.५३)

` निग्रह की सच्ची कसौटी संसार ही है ।` (पृ.६५)

` जब नैतिकता का अवमूल्यन होगा, तभी धर्म का अवमूल्यन होगा ।` (पृ.७८)

` हर मूल प्रतिदर्श की यही नियति होती है । उसके आधारपर सहस्त्रों प्रतिमाएँ बनती हैं, किन्तु मूल प्रतिदर्श वहीं-का-वहीं रखा जाता है - उसे कोई नहीं जानता । ` (पृ.९९)

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में अनेक उलझनों से ग्रस्त मानवी मन के आंतरिक सत्यों को प्रकाशित करने के लिए सशक्त भाषा का माध्यम चाहिए था । ` पात्रों चरित्रों के सूक्ष्म अंत:संघर्ष को जीवन्त करने के लिए नाटककारों ने संस्कृत नाटकों के अभिन्न अंग काव्य को अपनी नाटकीय भाषा से सज्जित कर समर्थ भाषा का मुहावरा निर्मित किया जो मनुष्य जीवन के आंतरिक परतों को बेसौफी और निर्दयता के साथ उघाड सके.` [१४] डॉ. शेष ने ` खजुराहो का शिल्पी ` के संवादों की भाषा में इसी सामर्थ्य को लाने का सफल प्रयास किया है ।

भाषा :

` खजुराहो का शिल्पी ` की भाषा डॉ. शेष के पूर्ववर्ती नाटकों से एकदम भिन्न है। वैसे उनका नाटयसृजन सन १९५६ से शुरू हुआ। लेकिन इस नाटक की रचनात्मक डॉ. शेष की प्रबल भाषा-शक्ति का दर्शन उनके किसी नाटक में नहीं हुआ था। वस्तुत: समकालीन अन्य नाटककारों की तुलना में डॉ. शेष का भाषा कौशल निश्चित ही सराहनीय रहा। लेकिन इस नाटक की भाषा में जो अनूठापन है वह उनकी पूर्ववर्ती कृतियों में नहीं मिलता।

दसवीं, ग्यारहवीं शती की ऐतिहासिक कथा के अनुरूप भाषा का निर्माण करने का सफल प्रयास ` खजुराहो का शिल्पी ` में हुआ है। भाषा का लहजा और उसकी संस्कृत प्रचुरता इसी बात के प्रमाण हैं। काल-बोध के लिए संस्कृत शब्दों का प्रयोग आवश्यक था। लेकिन संस्कृत प्रचुरता के कारण भाषा में कहीं बोझिलपन अथवा बनावटीपन नहीं आया है। अथवा ऐसा भी नहीं लगता कि संवादों को सायास निर्माण किया है।

भाषा की संस्कृत प्रचुरता के कारण वातायन, अधिष्ठात्री, दिग्दिगन्त, आर्यावर्त, मान-मर्दन, सर्जरवाह, युध्द-लिप्सा, द्वारपाल, उत्तराधिकार, आयुष्मती, परिक्रमा, प्रतीक्षारत, प्रतिदर्श, प्रस्थान, प्रस्तर, प्रतारणा, विषधर, प्रतिच्छवि, कोषपाल, मूर्तिशाला - आदि शब्द अनेक स्थानपर मिल सकते हैं।

नाटक के सभी प्रमुख पात्र कला के उपासक, सुसंस्कार संपन्न और एक हदतक भावुक पात्र हैं अत: उनकी भाषा उनके भावों और दर्शन को प्रकट करती है, लेकिन अत्यंत सहजता से। इसी कारण भाषा में अनेक ऐसे सहजोद्गार मिल जाते हैं, जिन्हें हम सूक्तियाँ कह सकते हैं।

श्री. नरनारायण राय के अनुसार - ` नाटक के अधिकांश संवाद मार्मिक धरातलपर काव्यत्वपूर्ण हैं। ` उदाहरण के रूप में -

तीसरे दृश्य में शिल्पी को प्रतिदर्श की कल्पना ऐसी ही काव्यात्मकता को लेकर उपस्थित हुई है -

शिल्पी : कविवर, मुझे एक ऐसी सजीव नारी-प्रतिमा चाहिए जिसका सौंदर्य अनिर्वचनीय हो, जिसका अंग-प्रत्यंग मानो स्त्रष्टा के हाथों की सुन्दरतम रचना हो, जिसकी आँखों में हर वांछित-भाव संगीत की लहर-सा तैर जाये .... (पृ.५१)

चौथे दृश्य के प्रारंभ में ही भाषा की काव्यात्मकता का उदाहरण मिलता है।

अलका : इसके पत्र की भाषा भी वही होगी जो सहस्त्रों प्रेयसियों के पत्र की होती है - यही, कि तुम बड़े निष्ठुर हो, हृदयहीन हो - हो सकता है, बसंत के आगमन और मन की बढ़ती व्यथा का वर्णन हो, चन्द्रमा द्वारा चाँदनी के बदले आग बरसाये जाने का वर्णन हो। रात की प्रतीक्षा - नींद न आने की बात तो होगी ही।` (पृ. ५९)

भाषा का एक और वैशिष्ट्य यह है, कि भाषा पात्रानुरूप और प्रसंगानुरूप है। उदाहरण के रूप में शिल्पी के संबंध में रमणी और सर्पवाली बात को लिया जा सकता है। पृष्ठ उनतीस और तीस पर यह प्रसंग चित्रित है। पड़ोसी व्यक्ति के स्वर में भय है, उसके संवाद की भाषा इसी भय को व्यक्त करती है। -

`आप नहीं जानते कविवर, वह बहुत भयानक आदमी है। एक दिन मैंने उसकी एक बाँह में डरावना सर्प और दूसरी बाँह में एक स्त्री को देखा था...`

शिल्पी लोगों के भय को जानता है। उसके संवाद में उसका आत्मविश्वास और उन्मुक्तता आभासित है -

` कविवर, रमणी और सर्पवाली बात से शायद आप बहुत आतंकित हैं।`

कवि माधव का आश्चर्य स्वाभाविक रीतिसे काव्यात्मक भाषा को लेकर अवतरित है। -

` क्या यह सच है, कि आपकी एक बाँह में स्त्री का धधकता यौवन और दूसरी बाँह में भयानक सर्प....एक साथ शृंगार और मृत्यु का अनुभव। `

उपर्युक्त उदाहरणों में बातें तो ` स्त्री और साँप ` के बारे में ही की गयी है, लेकिन हर पात्र की भाषा और लहजा भिन्न है। यह भिन्नता पात्र की प्रकृति, परिवेश और स्वभावजन्य वैशिष्ट्यों के अनुसार आयी है।

<u>काव्यात्मकता</u> :

त्रासदी में अन्य नाट्यप्रकारों की अपेक्षा भावकाव्यात्मकता अधिक मात्रा में होती है। संपूर्ण नाटक में करुणा और अन्य दु:खद भावनाओं का संचार रहता है। इन भावनाओंका प्रभाव बढाने में अनुकूल संगीत का साथ होता है। अथवा उत्कट आनंद की प्रतिक्रिया के रूप में भी गीत और संगीत का प्रयोग होता है। लेकिन आधुनिक काल में त्रासदी में गीत और संगीत का होना अत्यावश्यक नहीं माना जाता। प्रयोगधर्मी नाटककार अपनी कल्पनाशीलता से कुछ ऐसे उपकरण खोजता है, जो इस अभाव की पूर्ति कर सकें।

` खजुराहो का शिल्पी ` में गीतों की रचना नहीं है। नाटक में पार्श्वसंगीत के बारे में कहीं-कहीं रंगसंकेत दिये गये हैं, लेकिन उनकी मात्रा बहुत

कम है । फिरभी पूरे नाटक में उत्कट काव्यात्मकता के दर्शन होते हैं । डॉ. शेष ने यह काव्यात्मकता, भाषा और नाटक के अर्थ में निर्माण की है ।

श्री. नरनारायण राय के अनुसार – ` शिल्पी का जीवनवृत्त ही अपने आप में एक काव्य है और उसका जीवन जब प्रत्यक्ष दर्शन के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, तो मानो काव्य को रूपाकार मिलता है । सामान्यत: नाटकों में काव्यत्व की खोज मानसिक आधारोंपर की जाती है । इस आधारपर काव्यत्व की खोज करनेवाले समीक्षक भी निराश नहीं होंगे । नाटक के अधिकांश संवाद भाषिक धरातल पर काव्यत्वपूर्ण हैं । वस्तुत: नाटक का काव्यत्व सुरक्षित है नाटक के अर्थ की लय में । `[१५]

सहज, सरल, भावप्रवण भाषाके नमूने तो नाटक में जगह-जगह पर दृष्टायमान होते हैं । संस्कृत प्रचुरता के कारण भाषा में अर्थगर्भता तो आयी है, लेकिन बोझिलता नहीं आयी है । डॉ. शेष की मँजी हुई भाषा का एक उत्कृष्ट नमूना है – ` खजुराहो का शिल्पी । `

शिल्पी और अलका – दोनों प्रमुख पात्रों के जीवन में करूणा का जो स्पर्श है, उससे उनके चरित्र अत्यंत प्रभावोत्पादक बन गये है । पतन की गर्त से उबरने के लिए शिल्पी द्वारा किये गए अथक परिश्रम – उसकी तपश्चर्या, मानवी मोह को मूर्त-स्वरूप देने के लिए पत्थरों में निर्माण किया वह अमर काव्य – वैकुंठेश्वरनाथ मंदिर, अंत मे उसकी घोर तपश्चर्या के निष्फल होने का आभास – सभी विलक्षण है । नाटककार की कल्पना का यह पात्र मानवी उत्थान-पतन का काव्यात्म उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

राजकुमारी अलका – यौवन, वैभव, सौंदर्य और ममत्वपूर्ण आकर्षण की सजीव प्रतिमा, और उसकी अभिशप्त नियति – दर्शकों के मन में उसके प्रति नि:शब्द करूणा के स्त्रोत बहा देती है । शिल्पी के ये शब्द – ` अलका, तुम सचमुच अपनी अनुपस्थिति के कारण अमर होगी । ....तुमने मूल प्रतिदर्श

की व्यथा भोगी है।....तुम्हारी यही व्यथा खजुराहो के अद्वितीय शिल्प का प्राणतत्व बनेगी।....व्यथा ही किसी भी कलाकृति को अमर बनाती है, अलका। ` (पृ.१००) शिल्पी के ये उद्‌गार मानवी व्यथा को व्याख्यात करते हैं।

इसी मर्मव्यथा का चित्रांकन डॉ. शेष ने ` खजुराहो का शिल्पी ` द्वारा काव्यात्मकता से किया है। ` नाटककार के उद्देश्य - प्रतिपादन में सहायक प्रत्येक पात्र अपने कोमल और महत् भावजगत से प्रेरित हैं। ` काव्येषु नाटकं रम्यम् ` की अवधारणा में जीता हुआ यह नाटक काव्यात्मकतासे संपन्न है।`[१६] डॉ. सुरेश व डॉ. वीणा गौतम के उद्‌गार यहाँ अत्यंत सार्थ लगते हैं।

देश, काल तथा वातावरण :

पात्रों के व्यक्तित्व में स्पष्टता तथा स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रों के चारों और की परिस्थितियों, वातावरण तथा देशकालके विधान के वर्णन की विशेष आवश्यकता पडती है। नाटक में पात्रों का निर्माण देश, काल तथा वातावरण के विपरीत होने से अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है।

` खजुराहो का शिल्पी ` की कथावस्तु चंदेलों के कालखंड से निगडित है। नाटक की ` संदीपिका ` में नाटक का काल इसा की दसवीं, ग्यारहवीं शती दिया गया है। इस काल के उत्तरी भारत के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक वातावरण को नाटक में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ अंकित किया है। इस बात से यह स्पष्ट होता है, कि नाटक लिखने के पूर्व डॉ. शेष ने चंदेल राजवंश के इतिहास का पूरा अध्ययन किया था।

यह काल चंदेलों के शासन का सुवर्ण काल रहा है। चारों तरफ उनका साम्राज्य फैला था। अनेक राज्य उनके अधीन थे। राजकीय दृष्टि से

शांति का कालखंड होने के कारण कलाओं, विधाओं को प्रोत्साहन मिल रहा था। चंदेल धर्मनगरी खजुराहो में ८५ मंदिरों का निर्माण इसी बात की पुष्टि करता है। नाटक के पहले दृश्य में महाराज यशोवर्मन, महारानी पुष्पा और कवि माधव के संवादों द्वारा उस काल की परिस्थिति, कलाओं की मान्यता, चंदेलों की शक्ति आदि बातों का परिचय मिलता है।

नाटक में दसवीं, ग्यारहवीं शती का वातावरण निर्माण करने के लिए दो साधन हैं, एक भाषा और दूसरा रंगमंच सज्जा। डॉ. शेष ने नाटक में एक विशिष्ट हिन्दी का प्रयोग किया है। संस्कृत प्रचुरता से यह भाषा निश्चयही उसकाल के भद्र समाज में प्रयुक्त भाषा लगती है। उस भाषा का लहजा भी ऐतिहासिक वातावरण को पोषक बना है।

डॉ. शेष नाटक की मंचीयता का पूरा भार दिग्दर्शक के कंधों पर सौंप देने के पक्ष में थे। लेकिन इस नाटक में उन्होंने मंच संबंधी कुछ सूचनाएँ जरूर दी हैं। इन सूचनाओं से यही ध्वनित होता है, कि रंगमंच सज्जा वे उस काल से संबंधित ही प्रस्तुत करना चाहते थे।

नाटक में उस काल के धार्मिक वातावरण का निर्माण भी सफलतापूर्वक किया गया है। खजुराहो के मंदिर समूह में जैनियों और तांत्रिक पंथियों के मंदिरों का होना इसी बात की पुष्टि करता है, कि उस काल की धार्मिक परिस्थिति स्वस्थ और उदार परंपरावाली थी। चंदेलों के काल में हर धर्म, पंथ की ओर सहिष्णु वृत्ति से देखा गया।

नाटक के पाँचवे दृश्य में चंदेल राजा यशोवर्मन के सभी पंथों के प्रमुख आचार्यों के साथ विचार विमर्श का चित्रण है, जो इस राजा की सहिष्णु वृत्ति का परिचायक है।

एक और बात भी स्पष्ट होती है, कि उस काल के समाज में नैतिकता के नियम आज की अपेक्षा कुछ भिन्न ही थे। काम वासना के प्रदर्शन को निषिध्द नहीं माना जाता था। शायद उस काल के शाक्त पंथोंका ज्यादा प्रचलन इसका कारण होगा। कामवासना का दृश्यांकन अत्यंत खुली तरह से मंदिर जैसे सार्वजनिक स्थान पर हो सकता था। उस काल का समाज आज की अपेक्षा नीति-नियमों से मुक्त रहा होगा। नाटक में इस बात का चित्रण भी हुआ है।

नाटक में संकलन त्रय का पालन करनेका प्रयास किया गया है। कालैक्य (Unity of time) और कार्यैक्य (Unity of action) का पालन जरूर हुआ है, लेकिन स्थलैक्य (Unity of place) का पालन नहीं हो सका है। इसका कारण यह है, कि यह नाटक प्रथमत: रेडियो नाटक के रूप में लिखा गया था। रेडियो नाटक में ध्वनि का प्राधान्य रहता है और विशिष्ट ध्वनियों द्वारा ही स्थानों को दर्शाया जाता है। अत: स्थानों के दो, तीन अथवा चार होने से कुछ फर्क नहीं पडता। आजकल तकनीकी सुधारों के कारण रंगमंच की दृष्टि से भी स्थानों की अधिकता को दर्शानेमें कोई कठिनाई नहीं रह गयी है।

` ग्रीक आचार्यों ने संकलन-त्रय के जिस सिध्दांत को निर्धारित किया था, वह आज मान्य नहीं रहा। अत्याधुनिक नाटकों में जो संकलन-त्रय की प्रवृत्ति रक्षित हो रही है, वह वस्तुत: घटना-क्रम का ऐसा विकसित रूप है, जो कि समय, स्थान तथा कार्य के वैविध्य को लिये हुए भारतीय आदर्श के अनुरूप ऐक्य को रक्षित किये हुए है।`[१७]` खजुराहो का शिल्पी ` के संबंध में भी यह बात सत्य है।

<u>रचना विधान</u> :

रेडिओ नाटक के रूप में लिखे इस नाटक की कथावस्तु का विभाजन छ: दृश्यों मे हुआ है। नाटक में पहला दृश्य १६ पृष्ठोंका, दूसरा १५ पृष्ठोंका, तीसरा १८ पृष्ठोंका, चौथा १४ पृष्ठोंका, पाँचवा १७ पृष्ठोंका और छठा १३

पृष्ठों का है। दृश्यों के विभाजन में समानता लाने का प्रयास किया गया है। आकार में एकदम बड़ा अथवा एकदम छोटा दृश्य नाटक में नहीं है। केवल तीसरा दृश्य १८ पृष्ठों का है और छठा दृश्य १३ पृष्ठोंका लेकिन यह असमानता दुर्लक्षित करने योग्य है।

नाटक के प्रत्येक दृश्य में केवल चार-चार घटनाएँ ही घटित होती है। घटनाओं की उचित संख्या के कारण प्रत्येक दृश्य सुगठित बनकर अवतरित हुआ है। प्रत्येक दृश्य में कथा का विभाजन संतुलित रीति से हुआ है।

दृश्य परिवर्तन के लिए प्रकाश योजना का सहारा लिया गया है। लेकिन इसके संकेत भी केवल दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें दृश्य के अंत में ही मिलते हैं। पहले और छठवें दृश्य में दृश्यपरिवर्तन के लिए प्रकाश योजना की कोई सूचना नहीं मिलती।

नाटक में प्रकट और अप्रकट दोनों प्रकार के दृश्य हैं। अप्रकट दृश्यों का निर्माण सूचक संवादोंद्वारा किया गया है। अप्रकट दृश्य ये हैं - हेमवती का स्वप्न, शिल्पी के अतीत की घटना और मंदिर का निर्माण। ये घटनाएँ कभी रंगमंचपर घटित नहीं होती, लेकिन पात्रों के संभाषण द्वारा उनका आभास जरूर प्राप्त होता है।

पात्रों का आगमन और निर्गमन अत्यंत स्वाभाविक बना है। कभी पात्रों का आगमन नाटकीय ढंग से हुआ है, वहाँ कौतूहल की निर्मिति हो गयी है। उदाहरणार्थ - चौथे दृश्य में, मध्यरात्रि के समय शिल्पी की रंगशाला में सर्दी से काँपनेवाले गरीब, वृध्द व्यक्ति का प्रवेश अथवा पाँचवें दृश्य में धर्माचार्यों की सभा में चण्डवर्मा का अचानक प्रवेश करके, आक्रामक ढंग से विवाद में शामिल होना।

नायक की दृष्टि में एक उल्लेखनीय बात नाटक के रचनाविधान में उपलब्ध है। इस नाटक के प्रथम दृश्य में, नायक का आगमन नहीं होता। पाठकों को नायक कौन होगा, इसकी झलक नाटक के शीर्षक से और प्रथम दृश्य में पात्रों के संभाषण से मिल जाती है। नायक का आगमन दूसरे दृश्य में होता है और फिर वह बाद के प्रत्येक दृश्य में बराबर आता रहता है।

वस्तुत: डॉ. शेष की अन्य नाट्य रचनाओं से यह स्पष्ट होता है, कि वे ब्रेख्त की नाट्य प्रणाली से प्रभावित थे। इस प्रणाली में नाटक मे गीतों का समावेश रहता है। डॉ. शेष के परवर्ती नाटकों में यह वैशिष्ट्य जरूर मिलता है लेकिन ' खजुराहो का शिल्पी ' में कोई गीत रचना नहीं है। नाटककार ने नाटक में गीतों के लिए स्थान जरूर रखे हैं। लेकिन रंगमंच पर निर्देशक की स्वायत्त सत्ता माननेवाले शेष ने उन स्थानों पर गीत, संगीत का निर्माण निर्देशक पर सौंप दिया है। ऐसे स्थान नाटक में तीसरे दृश्य के अंत में और चौथे दृश्य के अंत में सूचित हैं।

भावस्थितियों का निर्माण प्रसंगानुरूप हुआ है। त्रासदी द्वारा प्रेक्षकों के मन में करूणा और दु:ख का प्रक्षोभ और शमन किया जाता है। ' खजुराहो का शिल्पी ' में मोह के क्षण में गिरनेवाले पात्रों की कारूणिक स्थिति का चित्रण हुआ है। अत: पूरा नाटक गंभीरता से युक्त है। नाटक में करूणा का प्राबल्य है। नाटक का अंतभी प्रेक्षकों के मन में इन्हीं भावनाओं का निर्माण करता है। फिर भी नाटक में अन्य जगहोंपर अनेक भावनाओं का चित्रण हुआ है। जैसे - शिल्पी के प्रति अलका का आकर्षण और अनुराग, चंडवर्मा की शिल्पी के प्रति ईर्ष्या भावना, महारानी पुष्पा की मातृभाव से उत्पन्न चिंता, माधव का नि:शब्द, निरपेक्ष प्रेम आदि भाव भी नाटक में भाव वैविध्य की सृष्टि करते हैं। इन भावपरिवर्तनों के कारण नाटक में एक ही भाव के प्राबल्य के दोष से बचाया है।

पाँचवें दृश्य में धर्माचार्यों की विवाद-सभा के दृश्य में गंभीर वातावरण की अनायास निर्मिति हो जाती है, लेकिन इस वातावरण की जडता से प्रेक्षकों के मन में ऊब पैदा होने के पूर्व ही चंद्रवर्मा का आवेशपूर्ण आगमन होता है। अपने आक्रामक वर्तन से वह गंभीर वातावरण को छेद देता है और कौतूहल की निर्मिति करता है। यहीं पर नाटककार अपनी नाट्य विषयक सूझ-बूझ का परिचय देता है।

नाटक का शीर्षक :

सामान्यत: नाटक का शीर्षक नाटक के मूल कथ्य को सूचित करनेवाला होता है। डॉ. शंकर शेष ने `मोह के दाग` का चित्रण करनेवाले इस नाटक के लिए जो शीर्षक चुना है वह है `खजुराहो का शिल्पी` जो नाटक के नायक का ही सूचक है। शिल्पी मेघराज आनंद नाटक की प्रधान कथा का प्रमुख पात्र है। उसने `मोह के दाग` से मिलनेवाली अनंत यातनाओं को भोगा है, और इसीलिए इस `मोह के दाग` से लोगों को सचेत करने के हेतु वह मंदिर बनाता है। वह पत्थरों की आत्मा को पहचाननेवाला संवेदनशील कलाकार है। लेकिन वह अपनी स्थितप्रज्ञता स्थापित करने के लिए राजकुमारी अलका के सुकोमल व्यक्तित्व की बली देता है। नाटक में शिल्पी का महत्व स्वयंस्थापित है। ऊपरी तौर से देखा जाए, तो नाटक की कथावस्तु शिल्पी मेघराज आनंद के उत्थान, पतन की कथा ही है। इसीलिए नाटक का शीर्षक औचित्य के तत्व को लेकर है।

नाटक का शीर्षक कभी कथ्य के मूल सूत्र को सूचित करता है, तो कभी नाटक की महत्वपूर्ण घटनाको, कभी नायक पर आधारित रहता है, तो कभी नायिकापर आधारित हो सकता है। इसी आधारपर `खजुराहो का शिल्पी` के अन्य समुचित शीर्षकों की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगी।

हेमवती के स्वप्न की घटना इस नाटक की प्रमुख प्रेरणादायक घटना है। इसी घटना के कारण यशोवर्मन मंदिर बनवाने की योजना बनाते हैं, विलक्षण शिल्पी की खोज की जाती है और आगे अन्य घटनाओं का एक क्रम तैयार हो जाता है। ये सारी घटनाएँ इस स्वप्न पूर्ति के ध्येय की ओर कथावस्तु को अग्रेसर बनाती रहती हैं। अत: ` हेमवती का स्वप्न ` शीर्षक भी नाटक के लिए योग्य था, इस शीर्षक से संबंध रखनेवाला एक शीर्षक लेकर प्रख्यात निर्देशक व्ही. शांताराम एक फिल्म निर्माण कर रहे हैं। ` खजुराहो का शिल्पी ` पर आधारित इस फिल्म का टायटल है -` खजुराहो का सपना `।

` खजुराहो का शिल्पी ` में शिल्पी इतना ही महत्वपूर्ण पात्र है ` अलका, ` जो अपने आंतरिक और बाह्य सौंदर्य से पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड जाती है। महाराज यशोवर्मन और महारानी पुष्पा की लाडली कन्या, चंदेल राजकुमारी, कविवर माधव की प्रेमदेवता, और शिल्पी मेघराज आनंद के शिल्प का प्रेरणास्त्रोत-आजभी खजुराहो के मंदिरों पर अपने अनेकानेक रूपोंसे दर्शकों को आकर्षित करती रहती है। निर्मोही शिल्पी से प्रेम करने के बदले मे उसे यातनादंड भोगना पडा। यह पात्र अपने अनामिक आकर्षण में पाठकों को बांधकर रखने की शक्ति रखता है। अंत में उसकी करूण स्थिति पाठकों के हृदय आर्द्र बना देती है। उस अलका को लेकर नाटक का नाम ` खजुराहो की अलका ` भी रखा जा सकता था।

डॉ. शोण ने इस नाटकपर आधारित उपन्यास के लिए यही नाम दिया है। ` खजुराहो का शिल्पी ` लिखने के बाद उनकी आकांक्षा उसे विस्तार देने के लिए और बढ गयी और यह केवल उपन्यास में ही संभव था, अत: ` खजुराहो की अलका ` (मरणोपरान्त सन १९८३ में प्रकाशित) धरती पर उतरी।....ऐसा लगता है नाटककार के रूप में शोण के हृदय में धुमडन रह

गई थी । उसे अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने इस उपन्यास का सहारा लिया ।"[१८]

नाटक का मूल सूत्र ' मोह का दाण ' है । हेमवती इस मोह के दाण से गुजर चुकी है । महाराज यशोवर्मन हेमवती के दुख से स्वयं आहत हो गये हैं । शिल्पी ने भी अपने जीवन में मोह के दाण के कारण अनेक दु:ख भोगे हैं । यशोवर्मन का ध्येय है हेमवती की आज्ञानुसार मनुष्य को मोह के दाणों से प्रवृत्त करनेवाला मंदिर बनवाने की, और शिल्पी मेघराज आनंद उसे मूर्तरूप देने के लिए कटिबध्द है । इस तरह पूरे नाटक की प्रेरणाशक्ति ' मोह का दाण ' ही है । नाटक के अधिकांश पात्र एक तो मोह के दाण में गिरते हैं अथवा उससे उबरने की कोशिश कर रहे हैं । अत: नाटक के लिए ' मोह का दाण ' शीर्षक अत्यंत उचित रहा होता ।

उद्देश्य :

' खजुराहो का शिल्पी ' में ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर मानवीय जीवन के वैश्विक सत्य का उद्घाटन करना यही डॉ. शेण का उद्देश्य था । इसके लिए उन्होंने दो प्रमुख कथाओं को चुना है । एक, चंदेल वंश की अधिष्ठात्री हेमवती की कथा – जिसके कारण महाराज यशोवर्मन मंदिर बनवाते हैं । और दूसरी, शिल्पी और अलका की कथा । इन्हीं कथाओं के आधार से उन्होंने ' दाण के मोह ' का दर्शन लोगों के सामने रखा है ।

यों तो बडे-बडे शब्दों में लोगों को उपदेश देना सरल है, लेकिन नाटक के सीमित दायरे में, अत्यंत सीधे शब्दों में जीवन का सार बताना कठीन कार्य है । इसी अशक्य प्राय कार्य को ' खजुराहो का शिल्पी ' द्वारा डॉ. शेण ने अच्छी तरह निभाया है ।

मंदिर का रूपक निर्माण करके मानवी स्वभाव को जिस बारीकी और कौशल्य से व्यक्त किया है, वह डॉ. शेण की हंसमेधा का प्रतीक है। ` यह मंदिर शाश्वत मानवीय सत्य, मानवीय जीवन की परिपूर्णता का प्रतीक है। शृंगार और भोग भी जीवन में उतना ही सत्य और अनिवार्य है जितना की अध्यात्म। जीवन को भोगे बिना, उसके आन्तरिक स्पर्शों के अनुभव के बिना अध्यात्म तक पहुँचने की कोशिश करना एक छल है। `[१९]

` काम ` और ` मोक्ष ` मानव जीवन की महत्वपूर्ण स्थितियाँ हैं। और ` काम ` सदा ` मोक्ष ` के पहले आता है। ` काम ` को तृप्त किये बगैर ` मोक्ष ` की ओर प्रस्थान साध्य नहीं है। अत: मानवी जीवन में भी सभी प्रकार के सौंदर्योंका आस्वादन करना परम कर्तव्य माना गया है। लेकिन यह आस्वादन जीवन के कुछ काल के लिए मर्यादित है। उसके बाद तृप्त मनुष्य संसार से पीठ फेर ही लेता है। सौंदर्यों के सभी प्रकार एकत्र मिलकर भी उसके सामने सजीव हो जाएँ, तो भी वह उनसे मुँह फेर लेने की शक्ति रखता है। तब उसका लक्ष्य संसार से परे होता है। सांसारिक मृगमरीचिका में उलझाकर रह जाना उसे पसंद नहीं होता। यही स्थिति ` मोक्ष ` की स्थिति मानी जाती है। सभी ऐन्द्रिय भोगों की नि:सारता का पता तब चल जाता है।

मानवी जीवन यात्रा के हर मोड पर मिलनेवाले ` मोह के क्षण ` से बचता हुआ मानव सीधे गर्भगृह तक पहुँच जाता है और ईश्वर से एकाकार बन जाता है। खजुराहो के सभी मंदिरशिल्प इसी भाषा को मुखरित करते रहते हैं। ` सम्पूर्ण नाटक मनुष्य के पतन और उसके उदात्तीकरण की दार्शनिक व्याख्या करती है....ऐतिहासिकता यहाँ मात्र सबल है - शाश्वत मानवीय सत्य को प्रकट करने का। [२०] यह कथन नाटक के मूल भाव को ही व्यक्त करता है।

खजुराहो के मंदिरों ने मानवी जीवन यात्रा के प्रत्येक पड़ाव को जगत् के सामने खोलकर रख दिया है । उन मंदिरों के माध्यम से फिर एक बार चिरंतन मानवीय सत्यों की प्रतिष्ठापना करना ही इस नाटक का प्रधान उद्देश्य है ।

` काम और मोक्ष मानव जीवन की दो अहम स्थितियाँ है जिन्हें अपेक्षित करना राम-रावण के धुरों बीच द्वन्द्वशील मानव के वश की बात नहीं है । `२१ हर मानव प्राणी के लिए यह कथन, सत्य प्रतीत होता है। मानव की इसी विवश नियति को खजुराहो का शिल्पी प्रत्यक्ष जीता है । उसके जीवन के माध्यम से प्रत्येक सामान्य आदमी के जीवन का चित्रण करना यही इस नाटक का उद्देश्य है ।

दोष :

प्रत्येक नाटककार का यह प्रयास रहता है, कि उसकी रचना कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से दोष रहीत हो । लेकिन थोडे बहुत दोषों तो रह ही जाते हैं । ` खजुराहो का शिल्पी ` में जो प्रमुख दोष दृष्टिगत होते हैं, वे हैं -

शिल्पी का चरित्रांकन दोषपूर्ण हुआ है । नाटककार ने इस पात्र में कुछ ऐसी बातें आरोपित की हैं, कि इस पात्र का चित्रण कुछ जगहोंपर अत्यंत विसंगत और अस्वाभाविक लगता है ।

शिल्पी सौंदर्य का भोक्ता है । लेकिन वह सौंदर्य में डूबकर रह जाना नहीं चाहता । उसके अनुसार जब कलाकार तटस्थ अथवा स्थितप्रज्ञ रहकर ही कला निर्मिति करता है, तब ही वह कला के ऊँचे आदर्शों की स्थापना कर सकता है । शिल्पी को इस प्रकार विदेह और निर्मोही बताया गया है,लेकिन नाटक

के अंत में एक मूर्ति को लेकर वह मोहवशता की जो बातें कहता है, वे ऐसे निर्मोही व्यक्ति के लिए असंगत लगती है - ` नहीं, अलका, इसे नष्ट मत करना .... मैं हाथ जोडता हूँ, इसे नष्ट मत करना ।` (पृ.१०१)

अपनी रचना के प्रति हर एक कलाकार के मन में मोह रहता है । लेकिन शिल्पी विदेह है, उसको न स्त्री का सौंदर्य बाँध कर रख सकता है, न ही मृत्यु का भय उसे विचलित कर सकता है । फिर एक मूर्ति के प्रति उसका इतना आसक्त होना कहाँ तक उचित है ?

नारी और सर्प की बात भी अतिरंजित लगती है । शिल्पी माया, मोह और मृत्यु भय से परे है - यह दिखाने के लिए नाटककार ने इन बातों का आधार लिया है । लेकिन एक सौंदर्य भोक्ता मनुष्य नारी की संगति में एकांत में बैठे समय अपने साथ नाग, सर्प रखे, यह बात हास्यास्पद लगती है । अनायास ही यहाँपर भगवान शिव - जिनके गले में सर्पमाला और साथमें देवी पार्वती रहती है - का स्मरण होता है । मृत्युभय से मुक्त शिल्पी को चित्रित करने के लिए नाटककार ने शिल्पी द्वारा विषधर पालने का वर्णन किया है (पृ.३६) लेकिन साँप पाल लेने से किसीका मृत्युभय विरहित होना ठीक नही लगता । शिल्पी की भयरहितता को दिखाने के लिए कुछ अन्य प्रकारकी घटनाओं से काम लिया जा सकता था ।

नाटक का अंत - शिल्पी को स्थितप्रज्ञ और विरागी सिध्द करनेवाले नाटककारने अंतिम प्रसंग में विपर्यस्त घटना का चित्रण करके क्या संदेश देना चाहा है, यह स्पष्ट नहीं होता । नाटक के अंतसे अनेक अर्थ ध्वनित होते हैं ।

इस अंत से पाठक दिग्भ्रमित हो जाता है। अंत में नाटकीयता का निर्माण नाटककार की प्रतिभाशक्ति का द्योतक है, लेकिन ऐसा अंत शिल्पी के चरित्र के बारेमें शंका उत्पन्न करता है। 'शिल्पी भी अलका से प्रेम करता है, पर केवल उसके प्रतिदर्श से, जीवन के कटु अनुभव ने इस सत्यको स्वीकार करनेका साहस उससे छीन लिया है।'[२२] यही सचाई लगती है। लेकिन इसपर लोगों के विवाद भी हो सकते हैं।

निष्कर्ष :

'खजुराहो का शिल्पी' का शिल्प-विधान अत्यंत सशक्त है। संवाद भाषा, काव्यात्मकता, देश, काल, वातावरण आदि बातों को सुयोग्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। अपने विषय संबंधी नाटककार का गहरा अध्ययन, तर्क पूर्ण रचना, सशक्त भाषा और संवादों के कारण पूरा शिल्प अत्यंत सुगठित रूप से सामने आता है। विभिन्न प्रसंगों की योग्य स्थानोंपर योजना कथ्य को संप्रेषित करने में सहायक सिध्द हुई है। नाटककार ने सुयोग्य शीर्षक की खोज करके पाठकों को पहले ही से आकर्षित कर लिया है। मानवी जीवन के उत्थान पतन को परिभाषित करने के उद्देश्य से नाटककार ने इस नाटक की रचना की है। 'मोह के क्षण' की अपरिहार्य उपस्थिति के कारण मनुष्य की शोकांतिका का चित्रण करने में नाटककार सफल रहा है।

संदर्भ

१) ` भारतीय संस्कृति कोश ` (मराठी) खंड तीसरा, पृ. २९०
पं. महादेवशास्त्र जोशी.

२) ` Khajuraho' - B. L. Dhama , P. 56

३) ` बुन्देलखण्ड दर्शन ` - मोतिलाल त्रिपाठी ` अशांत,` पृ. ५८

४) ` भारतीय संस्कृति कोश ` (मराठी) खंड तीसरा, पृ. २९१
पं. महादेवशास्त्र जोशी.

५) ` भारतीय संस्कृति कोश ` (मराठी) खण्ड दूसरा, पृ. ६१७
पं. महादेवशास्त्र जोशी.

६) ` खजुराहो की मंदिर शिल्पे ` पृ. २७ (मराठी), प्रा. उदाजीराव चव्हाण

७) ` भारतीय संस्कृति कोश ` खण्ड तीसरा (मराठी) पृ. २९०
पं. महादेवशास्त्र जोशी.

८) ` खजुराहोची मंदिर शिल्पे ` (मराठी) प्रा. उदाजीराव चव्हाण.

९) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष, पृ. ९८
डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. वीणा गौतम.

१०) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष, पृ. ९९
डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. वीणा गौतम

११) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में
डॉ. रीताकुमार, पृ. १०८.

१२) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम,
डॉ. वीणा गौतम, पृ .१००.

१३) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम,
डॉ. वीणा गौतम, पृ. २०६-२०७.

१४) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम,
डॉ. वीणा गौतम, पृ. २०२.

१५) आधुनिक हिन्दी नाटक - एक यात्रा दशक (हिन्दी नाटक १९७२)
डॉ. नरनारायण राय, पृ. १०३.

१६) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम
डॉ. वीणा गौतम, पृ. १००.

१७) साहित्य विवेचन - क्षेमचंद्र ' सुमन ' योगेंद्रकुमार मल्लिक, पृ. २०३.

१८) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम,
डॉ. वीणा गौतम, पृ. ३७-३८.

१९) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में -
डॉ. रीताकुमार, पृ. १०७.

२०) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में -
पृ. १०८.

२१) राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - डॉ. सुरेश गौतम,
डॉ. वीण गौतम, पृ.१०१

२२) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में -
डॉ. रीताकुमार, पृ. १०८.